दर्शन पाया । और लोगों से इन के अलौकिक प्रभावों की वर्णना सुनी । तव लोगों के वर्णन की वड़ी सावधानी से जांच अपने मनसे करता रहा । अन्त में यतीन्द्र श्री १०८भास्करानन्द जी महाराज के सव प्रकार पूर्ण महात्मा पाया ॥

प्रायः ऐसेही लोग देख पड़ते हैं जो कुछ नकुछ गृहस्थ का आसरा अवश्य रखते हों । जिसने जिस से कुछ आसरा किया वह उस से उस वात में अवश्य न्यून है तो पूर्णता उस में कहां हो सकती है। परन्तु उक्त श्री यतीन्द्र जी तो देहाभिमान त्यागपूर्वक कौपीन तक तज चुके हैं और सव से एक भाव से वर्त्तते हैं। इतने ही से आप लोग जान सकते हैं कि ये यतीन्द्र जी किसी का आसरा नहीं रखते ॥ और जो लोग उक्त महाराज को प्रसन्न करने के लिये महाराज की मूर्त्ति और स्तोत्र आदि रच रहे हैं यह सव इसी प्रकार का है जैसे सूर्य नारायण यह नहीं कहते कि तुम हमारी पूजा करो, या हमारी आरती करो तो हम में प्रकाश वढ़े पर मनुष्यमात्र के चित्त काधर्म है कि जिसे वह जितना पूर्ण समझताहै उसका उतनाही मान करता है औरपूजता है। इसी प्रकार यतीन्द्र जी की प्रेरणा के विना ही, लोग अपने मन से सेवा कर रहे हैं। और जिसने अपने शरीर में देहाभिमान छोड़ दिया है वह दूसरे के देह से किये जाते हुए कर्मों का क्यों विधि निपेध

करने लगेगा?क्योंकि उसकी दृष्टि में वे सब कुछ नहीं हैं। दूसरे यह भी कि "न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंज्ञिनाम्"। अर्थात् कर्म में लगे हुए अज्ञानियों के विश्वास को न बिगाड़े। इस गीता के वचनानुसार भी यतीन्द्र जी को निषेध करने की आवश्यकता नहीं इन सब बातोंसे जब मैं ने यतीन्द्र जी को पूर्ण महात्मा पाया तब यह विचारा कि अब ऐसे योग्य महात्मा का मिलनाभी दुर्लभहै यदि यतीन्द्रजी के प्रत्यक्ष तपके प्रभावों का अर्थात् स्वामीजी के जीवनचरित्र का संग्रह करके उसकी सरल भाषा में टीका करा लोगों में प्रचार कर दिया जाय तो जो लोग महात्माओं के दर्शनाभाव से नास्तिक से हुए जाते हैं वे लोग अवश्य इस पुस्तक को पढ़ और इसकी सचाई की जांच कर अपने सन्देह को दूर कर अपने अनमोल मनुष्य जन्म को नास्तिकपने से नष्ट न होने देवेंगे। यद्यपि प्राचीन समय के महात्मा लोगों का अत्यन्त अद्भुत चरित्र पुराण आदि में लिखा है पर उस का प्रत्यक्ष देखने वाला इस समय नहीं रह गया इस से साक्षी के बिना वह सब केवल पोथी का लिखा हो समझा जाने लगा॥ परन्तु उक्त यतीन्द्र जी के अद्भुत तपः प्रभाव के प्रत्यक्ष देखने वाले अभी विद्यमान हैं और यतीन्द्र जी भी अभी काशीपुरी को अपने चरण कमलों से पवित्र कर रहे हैं इस से इन के अलौकिक तपःप्रभाव को जो देखें सुनें या जाचेंगे उन

का विश्वास वेद आदि धर्मग्रन्थों पर अवश्य दृढ़ हो जायगा इसी अभिप्राय से मैं ने विद्वज्जनशिरोमणि श्री शिवकुमार शास्त्री जी से संस्कृत श्लोकों में श्री १०८ भास्करानन्द जी के जीवनचरित्र का संग्रह कराया है ॥ और उक्त स्वामी जी ने जिस क्रम से पूर्व पूर्व आश्रमों के उपरान्त संन्यास तक ग्रहण किया है और उन आश्रमों के धर्मों को किस बुद्धि विचार पूर्वक पूरा किया है किस दृढ़ ज्ञान और विचार पूर्वक वैराग्य के साथ संन्यास का ग्रहण किया है इन सब बातों को जो कोई इस ग्रन्थ को पढ़ मनन करेगा तो उसके चित्त में मीमांसा न्याय आदि शास्त्रों के वृथा वाद से जो ईश्वर की सृष्टि आदि के विषय का सिद्धान्त बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है और बहुत दिनों के वेदान्ताभ्यास से जो बातें प्राप्त होनी कठिन हैं सो सब एक थोड़े ही समय में चित्त में आजाँयगी। उस के साथ ईश्वर में श्रद्धा और भक्ति भी उत्पन्न होगी इत्यादि अनेक लाभों को देख मैं इस ग्रन्थ को अच्छे अक्षरों में छपवा कर विना मूल्य आप लोगों को अर्पण करता हूं । यदि थोड़े भी मनुष्य इस पुस्तक को पढ़ अपने को परम आस्तिक बना कर अपने वेदोक्त धर्म में दृढ़ होंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा ॥

सर्वहिताभिलाषी

महादेवप्रसाद चौधरी—प्रयागराज



द्वितीय विज्ञापन

पहिली वार इस परम लाभ कारी ग्रन्थ से हमारे इष्ट मित्रों को शीघ्र ही लाभ होवे इस इच्छा से मैं ने इस ग्रन्थ के छपने के लिये वंबई नगर के भेज छपवा लिया । परन्तु जब हिन्दी अर्थ पढ़ा गया तब यह विचार हुआ कि अभी हिन्दी में और बढ़ा कर इस की टीका की जाय और अन्वय कर उस के अनुसार अर्थ हो तो जो संस्कृत भाषा अभ्यास किया चाहते हैं उन भाइयों को भी इस पुस्तक से परम लाभ होगा इस अभिप्राय से मैं ने चतुर्वेद पण्डित जयगोविन्द मालवीय से इस का अन्वय अनुवाद आदि टीका बनवा कर पण्डितवर शिवकुमार शास्त्री जी के पास भेज उक्त शास्त्री जी की इच्छानुसार शुधवा कर छपवाया है॥ अनुवाद ही में भाषा का लालित्य, और मनोहरता गुण का आना कठिन होता है परन्तु जब अनुवाद में शास्त्र के कठिन सूक्ष्म विचारों का वर्णन किया जाय तब तो यथार्थ लालित्य गुण का आना अत्यन्त दुर्लभ हो जाता है । इस कारण भाषा की सुन्दरता का विचार छोड़ सरल हिन्दी भाषा में श्लोकों का अर्थ लिखा गया है । और स्तोत्र जो इस जीवन चरित्र के साथ छपे हैं उन का अन्वय अर्थ जैसा श्लोक से पाया गया वैसा किया गया

है। और बड़ों के लिये एक वचन देना अयोग्य सा मालूम पड़ता है क्योंकि "न चैक वचनं दद्यात् गुरावात्मनि चेश्वरे" यह निषेध भी प्रसिद्ध है। इस से श्लोक में तो छन्दों के अनुसार यद्यपि एकवचन लिखना पड़ा है पर प्रायः अनुवाद में उस का अर्थ बहुवचन में लिखा गया है। आशा है कि जहां आदर के लिये संस्कृत के एकवचनका भाषामें बहुवचन लिखा गया है उस स्थान को छोड़ अन्यत्र जहां कहीं छापे खाने के दोष से वा शोधक के नेत्र दोष से कुछ भूल हुई हो उसे आप लोग सुधार लेवेंगे। और माखन मिश्री के लड्डुआ की गोलाई आदि का ध्यान छोड़ कर केवल उस के गुण और स्वाद को उत्तम समझ जैसे ग्रहण करते हैं इसी प्रकार इस पुस्तक की भाषा के लालित्य के ध्यान को छोड़ इस के उत्तम २ आशय को परम उपकारी अत्युत्तम समझ आप लोग अपने हृदय में धारण करेंगे और श्रुति स्मृति कथित धर्म में दृढ़ होकर मेरे परिश्रम आदि को सफल करेंगे॥

भाद्रपद कृष्ण सप्तमी रविवार संवत् १९४९	वही एक आप सब का हिताभिलाषी महादेवप्रसाद चौधरी प्रयागराज

विशेष संकेत ॥

वाक्य पूरा नहीं हुआ तौ भी अन्वय और शब्दार्थ के बीच बीच में जो लकीरें दी गई हैं उनका यही अर्थ है कि यहां तक के अन्वय का अर्थ, इस लकीर तक पूरा हुआ है ॥ वाक्य समाप्त हुआ यह तात्पर्य नहीं है ॥

शुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९	८	पड़ना	पढ़ना
२२	१४	लासतानि	लसितानि
३३	६	का है	की है
३७	१७	भवेत्	भवेज्जगत्
४६	१	उपन्न	उत्पन्न
५१	९	एकान्त	एकांश
५२	११	अणुता	अणुतां
५४	१७	अणुकृता	अणुताकृता
६३	७	निरीक्ष्यता	निरीक्ष्यतां
७८	११	सुख दुःख	सुखदुःखदाई कर्म
९१	११	मदरा	मदिरा
९१	१४	प्रतिभातं	प्रतिप्रभातं
१०३	१	नियम	निगम
१०३	५	नियम	निगम
११५	१	द्यौवह्नि	द्यौर्वह्नि
१३७	९	नहीं है	नहीं हैं
१६०	६	वर्णन्त्य	वर्णयन्त्य

ॐ

यतीन्द्रजीवनचरितम्

श्रीगणेशाय नमः

यत् तद् ब्रह्मपुरान्तरालदहराभ्य-
न्तर्निविष्टं नभो यस्मिन्नोतमिदम्
नभः प्रभृति यद्भूमा श्रुतौ श्रूयते।
अन्तर्नाडि नियम्य मारुतगतिं य-
द् योगिभि र्ध्यायते तेजस्तच्छिव-
यो स्तनोतु जगतामुद्वेलमानन्द-
थुम् ॥ १ ॥

अन्वयः—यद् तद्ब्रह्मपुरान्तरालदह-
राभ्यन्तर्निविष्टम् नभः । यस्मिन् इदम्
नभःप्रभृति ओतम्। यत् श्रुतौ भूमा श्रू-

यते । योगिभिः अन्तर्नाडि मारुतगतिम् नियम्य यद् ध्यायते । शिवयोः तत् तेजः जगताम् उद्वेलम् आनन्दथुम् तनोतु ॥ १ ॥

शब्दार्थ—जो (तेज) उस शरीर के अन्तर्गत जो हृदय कमल उस के भीतर आकाश स्वरूप है। और जिस में यह आकाश आदि पोहा हुआ है। जो वेद में बड़ा सुनाई देता है। योगियों से नाड़ी के भीतर प्राण वायु की गति को रोक कर जो ध्यान किया जाता है । महादेव पार्वती का वह तेज जगत् के निःसीम आनन्द को बढ़ावे ॥ १ ॥

भावार्थ—जो तेज ब्रह्मपुर नाम शरीर के अन्तर्गत जो हृदय कमल उसके मध्य में आकाश स्वरूप है । और जिस में ये आकाश आदि सब पदार्थ पोहे हुए हैं। और वेद में जो सब से बड़ा कहागया है । और जिसे योगी लोग सुषुम्ना नाड़ी के भीतर श्वास के। रोक कर ध्यान करते हैं । महादेव पार्वती का वह तेज जगत् के आनन्द के। अत्यन्त बढ़ावे ॥१॥

लब्ध्वा जन्म जगत्सभाजितकु-

ले धृत्त्वा क्रमेणाश्रमांस्त्रीन् मा-
यामयमाकलय्य भुवनम् तुर्या-
श्रमे यः स्थितः । आबालस्थविरं
च यत्र जगतो ब्रह्मात्मताधी र्दृढा
व्याप्तुं काङ्क्षति नूनमद्य नितरां
चेतस्तिरश्चामपि ॥ २ ॥

अन्वयः—यः जगत्सभाजितकुले जन्म लब्ध्वा । क्रमेण त्रीन् आश्रमान् धृत्त्वा । भुवनम् मायामयम् आकलय्य । तुर्याश्रमे स्थितः । यत्र च जगताम् आबाल स्थविरम् ब्रह्मात्मताधीः दृढा । अद्य नूनम् तिरश्चाम् अपि चेतः नितराम् व्याप्तुम् काङ्क्षति ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जो जगत् पूजित कुल में जन्म ले। क्रम से तीन आश्रमों को धारण कर। संसार को माया रचित विचार कर। चौथे आश्रम में

स्थित हैं। और जिस में जगत के लड़कों से लेकर बूढ़ों तक की यह ब्रह्म स्वरूप हैं यह बुद्धि स्थिर है। अब निश्चय होता है कि (यह ब्रह्म स्वरूप हैं यह बुद्धि) पशु पक्षियों के भी चित्त में भली भांति व्याप्त हुआ चाहती है ॥ २ ॥

भावार्थ—संसार में सब से उत्तम कान्यकुब्ज ब्राह्मण के कुल में जन्म लेकर। विना ब्रह्मचर्य्य आदि तीनों आश्रमों का क्रम से सेवन किये मनुष्य चतुर्थ आश्रम सन्यास का उत्तम अधिकारी नहीं हो सकता इसी कारण से पूर्व जन्म का पुण्य फल रूप वैराग्य पहिले से था तौ भी तीनों आश्रमों का क्रम से सेवन किया। और जगत को माया रचित मिथ्या जान जिन्हों ने सन्यास आश्रम का धारण किया है॥ जिस को बालक से लेकर बूढ़े तक संसार के सब लोग ब्रह्म स्वरूप जानते हैं। केवल मनुष्य ही ऐसा मानते हों सो नहीं वरन पशु पक्षी भी अब इन योगीन्द्र महाराज को ब्रह्म स्वरूप ही मानते हैं ऐसा मालूम पड़ता है ॥ २ ॥

यस्येन्द्रादिसमस्तदेवपदवीसौख्यं घृणाधायकम् मिथ्यास्नेहमयान्ध-

कारपटलीविध्वंसभानुश्च यः । यस्यालोकनमात्रमेव विपुला मुन्मूल्य पापावलीम प्रत्यक्तत्त्वविशुद्धबोधविधये श्रद्धावतां कल्पते ॥

अन्वयः–इन्द्रादिसमस्तदेवपदवीसौख्यम् यस्य घृणाधायकम् । यः च मिथ्यास्नेहमयान्धकारपटलीविध्वंसभानुः। यस्य आलोकनमात्रम् एव विपुलाम् पापावलीम् उन्मूल्य । श्रद्धावताम् प्रत्यक् तत्त्वविशुद्धबोधविधये कल्पते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ–इन्द्र आदि सब देवताओं के पदवी का सुख जिन के घिन का कारण है। और जो झूठे मोह रूपी अंधेरे के परदे के नाश करने में सूर्य हैं। जिन का केवल दर्शन ही बड़े बड़े पापों की पङ्क्ति को नाशकर। श्रद्धावानों के अन्तरात्मा को उत्तम ज्ञान के लिये समर्थ कर सकता है ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो इन्द्र वरुण कुवेर आदि सब बड़े २ देवताओं के राज्य सुख को संसार की और वस्तुओं के समान नाशवान समझ तुच्छ समझते हैं। और जो मिथ्या स्नेह रूपी अँधेरे के दूर करने के लिये सूर्य्य सदृश हैं जैसे सूर्यनारायण दिन में वाहर के अँधेरे को नाश करते हैं उसी प्रकार योगीन्द्र जी रात दिन श्रद्धावानों के हृदय के भीतर के अन्धकार को नाश किया करते हैं। जिन का एक दर्शन ही श्रद्धावानों के अनेक जन्म के पापों को नाशकर उन को अन्तरात्मा के उत्तम ज्ञान के लिये समर्थ कर सकता है ॥ ३ ॥

पुण्या यस्य कुटुम्बिनी मतिरियं
ध्यानं परं भोजनम् भोगश्चापि त-
देव यस्य विदितं यत्पट्टवस्त्रं दिशः।
भूपालावलिभाललग्नमुकुट प्रोद्य-
ल्लामार्चिषा यन्नीराजनमस्ति रा-
गरहितं साम्राज्यमाप्तो ऽद्य यः ॥

अन्वयः—इयम् पुण्या मतिः यस्य कुटुम्बिनी। परम् ध्यानम् यस्य भोज-

नं। तद् एव च भोगः। दिशः यत्पट्ट-
वस्त्रं विदितं। अद्य भूपालावलिभाल
लग्नमुकुटप्रोद्यल्ललामार्चिषा यन्नीराज-
नं। रागरहितं साम्राज्यं यः आप्तः अ-
स्ति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—यह पवित्र मति जिसकी स्त्री है। केवल ध्यान करना जिन का भोजन है। और वही सुख भोग है। सब दिशाएं जिस का सूक्ष्म वस्त्र प्रसिद्ध हो रहीं हैं। आज राजा लोगों के माथे में लगे हुए मुकुट से निकली हुई सुन्दर ज्योति से जिसकी आरती होती है। इस प्रकार के राग रहित चक्रवर्तित्व को जो प्राप्त हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस महात्मा की पुण्य में तत्पर बुद्धि हो मानो अर्द्धाङ्गिनी है। ईश्वर का ध्यान करना ही जिन का भोजन और सुख भोग है। सब दिशा ही जिन का महीन उत्तम वस्त्र हो रहीं हैं और आज जिन की आरती राजा लोगों के माथे में लगे मुकुट मणि की चमक से हो रही है अर्थात् बड़े २ राजा लोग जिनके चरणों पर अपना मस्तक धरते हैं इस प्रकार उक्त यतीन्द्र जी का राग रहित राज्य है ॥ ४ ॥

कामक्रोधविमोहिताः सुतधनस्त्री
चिन्तनालोलुपाः स्वप्नेपीश्वरनाम-
गन्धरहिताः व्यग्राः परग्रासिनः ॥
यत्सान्निध्यमुपेतमात्रमनुजाः *
सौख्येन सम्बिभ्रते विश्वेशानपदा-
रविन्दयुगलध्यानस्पृहावन् मनः॥

अन्वयः—काम क्रोध विमोहिताः सुत-धनस्त्रीचिन्तनालोलुपाः। स्वप्ने अपि ईश्वर नाम गन्ध रहिताः। व्यग्राः पर-ग्रासिनः यत् सान्निध्यम् उपेतमात्रमनुजाः। सौख्येन विश्वेशानपदारविन्दयुगल ध्यानस्पृहावत् मनः सम्बिभ्रते ॥५॥

शब्दार्थ—काम क्रोध से मोहित, पुत्र धन स्त्री इन्हीं की चिन्ता में आसक्त। सपने में भी ईश्वर

---

* नित्यसापेक्षत्वात्समासः ॥

के नाम की गन्ध से दूर। घवड़ाये हुए दूसरे का (सर्वस्व) ग्रास कर जाने वाले भी जिन के समीप आने ही से मनुष्य लोग। सुख से विश्वेश्वर के चरण कमलों के ध्यान करने की इच्छा वाले मन को धारण करते हैं ॥ ५ ॥

भावार्थ—काम और क्रोध ने जिन को अपने वश में कर लिया है। स्त्री पुत्र और धन की चिन्ता में मग्न और इसी से सपने में भी ईश्वर के नाम की गन्ध से रहित अर्थात् भूल में भी जिन को ईश्वर का नाम स्मरण नहीं आता और घवड़ाये हुए दूसरों का सर्वस छीन लेने वाले भी मनुष्य यतीन्द्र महाराज के पास आने ही से सुख से अर्थात् परिश्रम के विना ही अपने मन को ईश्वर के चरण कमलों के ध्यान करने की इच्छा करने वाला कर लेते हैं ॥ ५ ॥

लीलामात्रविनिर्मिताऽमित नव-
ब्रह्माण्डमालोल्लसत् लोकेशानम-
राललास्यविधये यन्मानसं मान-
सम् ॥ तस्येदं चरितं जनोपकृतये

श्रीभास्करानन्दवित् योगीन्द्रस्य निरूप्यते श्रुतिमितं यच्चापि सन्दृश्यते ॥ ६ ॥

अन्वयः-यन् मानसम् लीलामात्र विनिर्म्मितामितनव ब्रह्माण्डमालोल्लसल्लोकेशानमराललास्यविधये मानसम्। तस्य श्रीभास्करानन्दवित्योगीन्द्रस्य इदम् यत् श्रुतिम् इतम्। अपि च सन्दृश्यते। (तत्) चरितम् जनोपकृतये निरूप्यते॥६॥

शब्दार्थ-जिन का मन, क्रीड़ा मात्र से रचे गये जो अपरिमित नये ब्रह्माण्ड उन में प्रकाशमान जो परमात्मा रूप हंस उसके खेलने के लिये मानसरोवर सा है। उन श्री भास्करानन्द विद्वान् योगीन्द्र का यह जो कान तक पहुंचा है। और देखा जाता है। वह चरित लोगों के उपकार के लिये प्रकाश किया जाता है॥

भावार्थ—जिन योगीन्द्र महाराज का मन रूपी

मानसरोवर, क्रीड़ा मात्र से असंख्य बड़े से बड़े नये नये ब्रह्माण्ड रूपी अण्डा के उत्पन्न करने वाले हंस रूप परमेश्वर की क्रीड़ा का स्थान है अर्थात् जिन के चित्त में सदा विराजमान रहते हैं। उन यतीन्द्र श्री १०८ भास्करानन्द जी का जीवन चरित्र जो कुछ सुना गया है और देखा जाता है वह सब के कल्याण के लिये लिखा जाता है ॥ ६ ॥

इदं भुवनमंगलं दुरितनाशनायाप्यलम् नृणां निखिलसम्पदामपि निधानभूतं परम्। श्रुतं स्मृतमथामृतं हृदि समादराद् भावितं चरित मखिलक्षमा विदित मस्तु सन्तुष्टये ॥ ७ ॥

अन्वयः—इदम् चरित्रम् श्रुतम् अथ स्मृतम्। भुवनमङ्गलम्। दुरितनाशनाय अपि अलम्। नृणाम् निखिलसम्पदाम् अपि परम् निधानभूतम्। हृदि समा-

दराद् भावितम् अमृतम्। अखिलक्ष्मा-
विदितम् सन्तुष्ट्ये अस्तु॥७॥

शब्दार्थ—यह चरित्र सुना जाय अथवा स्मरण किया जाय (तो)। सब का मङ्गल करता है। पाप के नाश करने के लिये भी समर्थ है। मनुष्यों की सब सम्पत्ति का मुख्य स्थान है। हृदय में आदर से ध्यान किया जाय तो अमृत है। (यह) सब पृथिवी में प्रसिद्ध होकर सन्तोष के लिये होवे॥ ७॥

भावार्थ—योगीन्द्र महाराज का चरित्र सुना जाय अथवा स्मरण किया जाय तो सब का कल्याण करता है सब पापों को दूर करता है और मनुष्यों को सब प्रकार की सम्पत्ति देता है। और बड़े आदर से हृदय में विचारा जाय तो अमृत है अर्थात् मोक्ष को भी देता है ऐसा यह चरित्र सब लोगों के सन्तोष के लिये सब जगह प्रसिद्ध होवै॥ ७॥

रिरक्षिषथ चेत् सुखं मनसिजा-
दितः स्तेनतः सुदुर्गमभवाटवी-
मपि तरीतुमिच्छा यदि। अवश्य

मिदमस्त्रवन् निविडवर्मवच्चासकृद् दृढीकृतमुपस्कृतं मनसि सज्जना नह्यत ॥ ८ ॥

अन्वयः–(हे) सज्जनाः (यूयम्) यदि मनसिजादितः स्तेनतः। सुखं रिरक्षिषथ। चेत् सुदुर्गमभवाटवीम् तरीतुम् अपि इच्छा। (तर्हि) अवश्यम् इदम् अस्त्रवत् निविडवर्म्मवत् च। असकृद् दृढीकृतम् उपस्कृतम् मनसि नह्यत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ–हे सज्जनो! (तुम लोग) जो कामदेव आदि चोरों से। सुख की रक्षा किया चाहते हो। (और) जो संसार रूपी वन के पार जाने की इच्छा हो। तो अवश्य इसे अस्त्रों के समान अच्छे कवच के समान। अनेक वार दृढ़ कर और अलंकृत करके मन में धारण करो ॥८॥

भावार्थ—हे सज्जन लोगो! आप लोग जो काम क्रोध आदि चोरों से अपने सुख की रक्षा किया चाहते

हो और जो दुर्गम संसार रूपी वन के पार जाने की अर्थात् मुक्त होने की इच्छा रखते हो तो अवश्य इस चरित्र को शस्त्र और कवच के समान दृढ़ करके और सजाय करके मन में भली भांति ध्यान करो ॥ ८ ॥

मन्त्रग्रामाश्रयाणां सविधिकृतमखै स्तोष्यमाणामराणां विद्यासत्कीर्त्तिकान्त्या धवलितजगतां धर्षितेन्दुप्रभाणाम् । वासस्थानं मुनीनां स्मृतिषु निगदिताचारविश्रामभूमिः देशो यः श्लाघनीयो जगति विजयते कान्यकुब्जाभिधानः ॥ ९ ॥

अन्वयः—यः मंत्रग्रामाश्रयाणाम् । सविधिकृतमखैः तोष्यमाणामराणाम् । विद्यासत्कीर्त्तिकान्त्या धवलितजगता-

म्। धर्षितेन्दुप्रभाणाम् मुनीनाम् वासस्थानम्। स्मृतिषु निगदिताचारविश्राम-
भूमिः। श्लाघनीयः कान्यकुब्जाभिधा-
नः देशः। जगति विजयते ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जो मंत्रोंके समूह के आधार। विधि से किये गये यज्ञों से देवताओं के सन्तुष्ट करने वाले। विद्या और उत्तम यश की चमक से जगत को उज्वल करने वाले। और चन्द्रमा की चांदनी का तिरस्कार करने वाले मुनियों का वास स्थान। स्मृतियों में कहे गए आचारों का विश्राम स्थान। प्रशंसा के योग्य कान्यकुब्ज नाम का देश जगत में सब से उत्तम है॥

भावार्थ—जो देश ऋक् यजुः साम अथर्व के जानने वाले और बड़ी विधि से यज्ञ कर देवताओं के प्रसन्न करने वाले॥ और जिन्हों ने अपनी विद्या और यश की चमक से जगत को उज्वल कर दिया है चन्द्रमा की चांदनी को मलिन दर्शा दिया है ऐसे मुनियों के रहने का स्थान है और स्मृतियों में कहे गये आचार विचारों के टिकने की जगह है ऐसा

प्रशंसा योग्य यह कान्यकुब्ज देश जगत में सब से उत्तम है ॥ ९ ॥

तस्मिन् कान्हपुराख्यपत्तनमही
भूषाभवद्भोगवन् मैथेलालपुरेति
शब्दितपुरं विद्याचणं राजति ।
मिश्रस्तत्र धरासुरो हिमकरस्याप्तः
कुले सम्भवं मिश्रीलाल इतीरितो
जलधिजानाथाङ्घ्रिपद्मप्रियः १०

अन्वयः—तस्मिन् कान्हपुराख्यपत्तनमहीभूषा भवद्भोगवत् । विद्याचणम् मैथेलालपुर इति शब्दितपुरम् राजति । तत्र हिमकरस्य कुले धरासुरः मिश्रः । जलधिजानाथाङ्घ्रिपद्मप्रियः । मिश्रीलाल इति ईरितः सम्भवम् आप्तः ॥

शब्दार्थ—उस देश में कान्हपुर नाम नगर की पृथवी का भूषण भूत सुखशाली । विद्या से

विख्यात मैथेलालपुर इस नाम से कहा गया पुर विराजमान है। वहां श्री हिमकर जी के कुल में ब्राह्मण, मिश्र, लक्ष्मीनाथ (भगवान्) के चरण कमलों में प्रीति करने वाले। मिश्रीलाल इन शब्दों से प्रसिद्ध ने जन्म लिया॥ १० ॥

भावार्थ—उस कान्यकुब्ज देश में कानपुर जिला की पृथिवी का भूषण स्वरूप सुख का स्थान, और विद्या से विख्यात मैथेलालपुर नाम का गांव है। उस गांव में हिमकर जी के कुल में लक्ष्मीनाथ भगवान के चरण कमलों के प्यार करने वाले ब्राह्मण मिश्र श्रीमिश्रीलाल जी ने जन्म लिया॥ १० ॥

तस्मादजायत सुधी र्मतिराम नामाजन्मान्तरीयसुहृदं विरतिं दधानः। यः साम्प्रतं नृपसहस्रकिरीटरत्नच्छायासमीडितपदो ऽस्ति दिगम्बरो ऽपि॥ ११ ॥

अन्वयः—तस्मात् जन्मान्तरीयसुहृदम्

विरतिम् दधानः । सुधीः मतिरामनामा अजायत। यः साम्प्रतम् दिगम्बरः अपि। नृपसहस्रकिरीटरत्नच्छायासमीडितपदः अस्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—उस (मिश्रीलाल जी) से दूसरे जन्म के मित्र वैराग्य को धारण किये । बुद्धिमान् श्रीमतिराम जी उत्पन्न हुए। जो इस समय दिगम्बर हैं तो भी हजारों राजा के मुकुट मणि की छाया से सेवितचरण हैं ॥ ११ ॥

भावार्थ—मित्र श्रीमिश्रीलाल जी से द्वितीय जन्म के मित्र वैराग्य को हृदय में धारण किये हुए अत्यन्त बुद्धिमान श्रीमतिराम जी उत्पन्न हुए । जो इस समय दिगम्बर हैं तिस पर भी हजारों राजा अपने मुकुटमणि की छाया से चरण सेवा किया करते हैं ॥११॥

गर्भाष्टमं वत्सरमाश्रितस्य जातं व्रतादेशविधानमस्य । अध्येतुमारब्ध च तत्परस्ताद् दाक्षीसुतव्याकरणं पुरस्तात् ॥ १२ ॥

अन्वयः—गर्भाष्टमम् वत्सरम् आश्रितस्य अस्य। व्रतादेशविधानम् जातम्। तत् परस्तात् पुरस्तात्। दाक्षीसुतव्याकरणम् अध्येतुम् आरब्ध च ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—गर्भ अवस्था से आठवें वर्ष को पहुंचे (तब) इस। (महाराज) का यज्ञोपवीत हुआ। उसके उपरान्त पहिले। पाणिनि के व्याकरण का पढ़ना आरम्भ किया ॥ १२ ॥

भावार्थ—गर्भ समय से आठवें वर्ष में उक्त महात्मा जी का विधिवत् यज्ञोपवीत हुआ उस के उपरान्त महात्मा जी ने पहिले पाणिनीय व्याकरण का पढ़ना आरम्भ किया ॥ १२ ॥

उद्वाहो विधिवद् बभूव विदुषस्तस्यास्य संवत्सरे प्राप्ते द्वादशकेऽथ सप्तदशके वर्षे मुनेः पाणिनेः। शास्त्रं वार्तिकशेषभाष्यसहितं सम्यक् समाप्याखिलं विद्याकीर्त्तिभृतांस-

द:सु गणितो जातो महोदारधीः॥

अन्वयः—तस्य विदुषः उद्वाहः। द्वादशके संवत्सरे प्राप्ते विधिवद् बभूव। अथ महोदारधीः सप्तदशके वर्षे वार्त्तिकशेषभाष्यसहितम्। मुनेः पाणिनेः अखिलं शास्त्रम् सम्यक् समाप्य। विद्या कीर्त्तिभृतां सदःसु गणितः जातः॥१३॥

शब्दार्थ—उस विद्वान का विवाह। बारहवें वर्ष के प्राप्त होने पर विधिवत हुआ। उपरान्त अति उत्तम बुद्धि वाले ने सत्रहवें वर्ष में वार्तिक और शेष जी के भाष्य सहित। मुनीश्वर पाणिनि जी के सम्पूर्ण शास्त्र को अच्छे प्रकार से पूरा किया। तब विद्या सम्बन्धी कीर्त्ति वालों की सभा में गिने जाने लगे॥ १३॥

भावार्थ—उक्त विद्वान का विवाह बारहवें वर्ष में उत्तम विधि से हुआ। उपरान्त अति उत्तम बुद्धि वाले उस विद्वान ने सत्रह वर्ष की अवस्था में भाष्यान्त व्याकरण भली भांति पढ़ लिया और तब

विद्या सम्बन्धी कीर्त्तिवाले बड़े बड़े विद्वानों की सभा में गिने जाने लगे ॥ १३ ॥

अष्टादशे चास्य बभूव सूनु वर्षे द्वितीयाश्रमधारणस्य । फलं विलोक्याय मिमं तदानीं गृहाद् विनिर्गन्तुमना बभूव ॥ १४ ॥

अन्वयः—अष्टादशे च वर्षे अस्य सूनुः बभूव । तदानीम् अयम् इमम् (पुत्रम्)। द्वितीयाश्रमधारणस्य फलम् विलोक्य। गृहाद् विनिर्गन्तुमनाः बभूव ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—अठारहवें वर्ष में इस (महात्मा) के पुत्र उत्पन्न हुआ। तब इस (महात्मा) ने इस (पुत्र) को दूसरे आश्रम का फल रूप विचार कर। घर से वाहर जाने की इच्छा की ॥ १४ ॥

भावार्थ—अठारहवें वर्ष की अवस्था में महाराज के पुत्र उत्पन्न हुआ। उस समय महात्माजी ने गृह-

स्याश्रम के ग्रहण करने का फल पुत्र हो चुका है यह विचार इस गृहस्थी के छोड़ने की इच्छा की ॥१४॥

वैराग्ये हि सति प्रबोधमहिते पुत्रो-द्भवाद्युत्सवा स्ते ते नैव विमो-हयन्ति कृतिनं सच्चित्प्रमोदात्म-कम् । सावित्रांशुमिलन्नवारुणरु-चिव्यासङ्गजाग्रज्जगत् तामिस्र-स्य महान्त्यहो विलसितान्यारु-न्धते वा किमु ॥ १५ ॥

अन्वयः—हि प्रबोधमहिते वैराग्ये सति ते ते पुत्रोद्भवाद्युत्सवाः। सत् चित् प्रमो-दात्मकम् कृतिनम् नैव विमोहयन्ति । अहो किमु वा तामिस्त्रस्य महान्ति वि-लसितानि। सावित्रांशुमिलन्नवारुणरुचि व्यासङ्गजाग्रज्जगत् आरुन्धते । (नेति शेषः) ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—क्योंकि ज्ञान से पूजित वैराग्य के होने पर वे पुत्र के जन्म आदि उत्सव। सच्चिदानन्द ज्ञानरूप पुण्यात्मा को नहीं मोह सकते। क्यों जी ! क्या रात का वड़ा भी अन्धेरा। सूर्य की किरणों से मिली हुई नई नई अरुण की किरण के लगने से जागते हुए जगत को ढांक सकता है ? (कधी नहीं) ॥ १५ ॥

भावार्थ—क्योंकि ज्ञान युक्त उत्तम वैराग्य के होने पर पुत्र का जन्म पुत्र का विवाह इत्यादि उत्सव सच्चिदानन्द स्वरूप विद्वान योग्य पुरुष को मोहित नहीं कर सकते। क्यों जी ! क्या रात का वड़ा भी अन्धेरा सूर्य की किरण से मिली हुई नई नई अरुण की किरणों से प्रकाशमान जगत को कधी ढांक सकता है अर्थात् प्रभात समय, क्या रात का अन्धेरा कहीं रह जाता है ? कहीं नहीं ॥ १५ ॥

प्रतिदिनमुपचीयमानशोभासुतधनयौवनजाद्यनेकभावम् । नरकपतनहेतुमेव सर्वं समकलयत् स समिद्धबोधरूपः ॥ १६ ॥

अन्वयः—समिद्धबोधरूपः सः प्रतिदिनम्। उपचीयमानशोभासुतधनयौवनजाद्यनेकभावम्। सर्वम् एव नरकपतनहेतुम् समकलयत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—उज्वल ज्ञान स्वरूप उस (महात्मा) ने प्रतिदिन। बढ़ती हुई शोभा, सुत, धन और जवानी के अनेक विकार। इन सबों को नरक में गिरने का कारण समझा ॥ १६ ॥

भावार्थ—उत्तम ज्ञान वाले उस महात्मा ने दिन दिन बढ़ती हुई सब शोभा को पुत्र, धन और जवानी में चित्त में उत्पन्न होते हुए अनेक विकार इन सबों को नरक में ले जाने वाले ही समझा ॥ १६ ॥

जगति भवति वृत्तिः कीदृशी वार्द्धकेऽपि ज्वलिततरुणभावेऽप्यस्य कीदृक् बभूव। अवहितमनसेदं भाव्यते चेद् बुधानां स्फुरति प्रथमजन्मोद्भूतपुण्यं निदानम्॥ १७॥

अन्वयः–जगति वार्द्धके अपि कीदृशी वृत्तिः भवति । ज्वलिततरुणभावे अपि अस्य कीदृग् बभूव । इदम् अवहितमनसा विभाव्यते चेत् । बुधानाम् (मनसि) प्रथमजन्मोद्भूतपुण्यम् निदानम् स्फुरति ॥ १७ ॥

शब्दार्थ–संसार में बुढ़ापे में कैसी वृत्ति होती है । नई जवानी में भी इस (महात्मा) की कैसी (वृत्ति) हुई । यह सावधान मन से जो विचारा जाय तो । पण्डितों के (मन में) पूर्वजन्मकृत पुण्य ही इस का कारण मालूम पड़ता है ॥ १७ ॥

भावार्थ—संसार में बुढ़ाई में भी मनुष्यों के चित्त की दशा कैसी होती है अर्थात् पोते का व्याह देख लेते तो अच्छा इत्यादि तृष्णा बढ़ती जाती है । पर इस महात्मा की चित्त की वृत्ति चढ़ती जवानी में भी कैसी दृढ़ वैराग्य वाली हुई यह बात सावधान मन से विचारी जाय तो पण्डितों के मन में यही उदय होगा कि उक्त महात्मा के पूर्व जन्म के पुण्य का फल उदय हो रहा है ॥ १७ ॥

इह कलयति को न कामिनीनां
कुटिलकटाक्षनिपातमाप्य सौख्य-
म्। हृदयमनुबबन्ध कस्य नो वा
सुतमुखवीक्षणमस्य काकली वा॥

अन्वयः—इह कः कामिनीनाम् कुटि-
लकटाक्षनिपातम् आप्य। सौख्यम् न
कलयति। सुतमुखवीक्षणम् वा अस्य
काकली वा। कस्य हृदयम् नो अनुब-
बन्ध। (अपितु सर्वस्य अनुबबन्ध इति
शेषः॥ १८॥

शब्दार्थ—यहां कौन सुन्दर स्त्रियों के कुटिल
कटाक्षों के सम्बन्ध को पाकर। सुख नहीं मा-
नता है। (और) पुत्र के मुख का दर्शन
अथवा इस के मीठे मीठे वचन। किस के हृदय
को (स्नेह पाश से) नहीं बांधते।? वरन सब
के हृदय को स्नेह पाश में बांध लेते हैं॥१८॥

भावार्थ—इस संसार में कौन ऐसा मनुष्य है जो सुन्दर स्त्रियों के कटाक्षों को अपने ऊपर आते देख कर सुखी नहीं होता। पुत्र के मुख का दर्शन और पुत्र के मीठे मनोहर शब्द किस के चित्त को स्नेह रूपी जाल में नहीं बांध रखते। वरन सब के चित्त को बांध रखते हैं ॥ १८ ॥

विलसति किल तावदेव लोके ध-
नवनितादि विरागबद्धचर्चा। वि-
कसतिनहि यावदङ्गनानां हठ-
दवितेतरभावनो विलासः ॥ १९ ॥

अन्वयः—लोके तावत् एव धनवनितादिविरागबद्धचर्च्चा विलसति किल। यावत् हठदवितेतरभावनः अङ्गनानाम् विलासः नहि विकसति ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—लोक में तभी तक धन और स्त्री आदि से जो वैराग्य उस से युक्त विचार ठीक रहता है। जब तक हठ से दूसरे विचारों का

दूर करने वाला स्त्रियों का हाव भाव (चित्त में) नहीं उदय होता है ॥ १९ ॥

भावार्थ—लोगों के चित्त में तभी तक धन और स्त्री पुत्र आदि की ओर से वैराग्य का विचार ठीकर रहता है । जब तक वल से दूसरे विचारों का दूर करने वाला सुन्दर स्त्रियों का हाव भाव कटाक्ष नर के चित्त में उदय नहीं होता ॥ १९ ॥

अपि भवतु विशेषशास्त्रदृष्टि रुपनिषदः परिशीलिताश्च सन्तु । परिषदि कथनाय सर्वमेतद् विषयविरक्तिपदं तु दूरसंस्थम् २०॥

अन्वयः—विशेषशास्त्रदृष्टिः अपि भवतु । उपनिषदः च परिशीलिताः सन्तु । एतद् सर्वम् परिषदि कथनाय। विषयविरक्तिपदम् तु दूरसंस्थम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ—शास्त्र का विशेष बोध भी हो । और उपनिषद भी भली भांति अभ्यास की गईं

हों। यह सब सभा में कहने के लिये हैं। विषयों से वैराग्य रूप स्थान तो दूर स्थित है॥

भावार्थ—शास्त्रों का विशेष ज्ञान हो। और उपनिषदों का भी भली भांति अभ्यास किया हो। परन्तु उक्त ज्ञान और अभ्यास केवल सभा में पण्डिताई प्रगट करने के लिये देखाजाता है। और संसार के विषयों से वैराग्य तो बहुत दूर है ॥२०॥

धनमपि मनसोऽपकर्षणं कुरुते ऽदस्तु न न प्रसिध्यति। अपि कणकक्ते त्यजेदसून् इति लोके किमु नो निभालितम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—धनम् अपि मनसः अपकर्षणम् कुरुते। अदः तु न प्रसिध्यति (इति) न (किन्तु प्रसिद्ध्यत्येव)। लोके कणकक्ते अपि असून् त्यजेत्। इति किमु नो निभालितम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—धन भी मन का आकर्षण करता है।

यह नहीं प्रसिद्द है (यह वात) नहीं है (अ-
र्थात् प्रसिद्द है)। संसार में एक कने के लिये
भी प्राण छोड़ दें। ऐसा क्या नहीं देखागया
है। (अर्थात् देखागया है) ॥

भावार्थ—धन भी मन को संसार की ओर खींच-
ता है यह वात न प्रसिद्ध हो यह नहीं है अर्थात् इसे
सब लोग जानते हैं। क्योंकि संसार में एक तुच्छ
वस्तु के लिये प्राण छोड़ दे सकते हैं ऐसे क्या नहीं
देखे गए हैं ? अर्थात् बहुत से देखे जासकते हैं ॥

इति सुविदित मस्ति सन्मतीनाम्
परमिदमस्य तु यौवने ऽपि पश्य।
अभवदतितरामनन्यलभ्यो धन-
युवतीसुतमानतो विरागः ॥२२॥

अन्वयः—इति इदम् सन्मतीनाम् सु-
विदितम् अस्ति। परम् तु अस्य यौवने
अपि। धनयुवतीसुतमानतः अनन्यल-
भ्यः। विरागः अतितराम् अभवत् (इति)
पश्य ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—यह सब बुद्धिमान लोगों को भली-भांति मालूम है । लेकिन देखो इस (महात्मा) को जवानी में भी । धन, स्त्री,पुत्र, और प्रतिष्ठा से स्वभाव से ही। अत्यन्त वैराग्य हुआ ॥

भावार्थ—उक्त सब बातें बुद्धिमान लोगों का मालूम है लेकिन देखो इस महात्मा का नई जवानी में ही स्त्री पुत्र धन और प्रतिष्ठा इन सबों की ओर स्वभाव ही से अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ ॥ २२ ॥

प्रथमजनुषि नित्यकर्मजातम् समयविशेष निबन्धनं च यद् यद् । अविहितपरिवर्जनं च शश्वद् विहितमभूदतियत्नतो ऽस्य पुंसः ॥

अन्वयः—अस्य पुंसः प्रथमजनुषि नित्यकर्मजातम् । यत् समयविशेषनिबन्धनम् । यत् च अविहितपरिवर्जनम् (तत् सर्वं कर्म) । अतियत्नतः शश्वत् विहितम् अभूत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—इस (महात्मा) पुरुष से पूर्व जन्म में नित्य कर्मों के समूह। समय समय के कर्म। और निषिद्ध कर्मों के त्याग। (ये सब कर्म) बड़े यत्न से सदा किये गये थे ॥ २३ ॥

भावार्थ—इस महात्मा पुरुष ने पूर्व जन्म में सन्ध्या वन्दन आदि नित्य कर्मों को और ग्रहण स्नान आदि नैमित्तिक कर्मों को और हिंसा आदि निषिद्ध कर्मों के त्याग को बड़े यत्न से सदा किया है अर्थात् धर्मशास्त्रों की आज्ञा का पालन पूर्ण रूप से किया है ॥

कृतवानयमन्यजन्मसु चिरमीशानपदाम्बुजार्चनम् । कथमेकपदे ऽन्यथा भवेद् विषयेष्वामिषधीकृता घृणा ॥ २४ ॥

अन्वयः—अयम् अन्यजन्मसु चिरमीशानपदाम्बुजार्चनम् कृतवान्। अन्यथा कथम् विषयेषु एकपदे। आमिषधीकृता घृणा भवेत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—इस (महात्मा) ने पूर्व जन्म में बहुत काल तक महादेव जी के चरण कमल की पूजा की है। नहीं तो क्यों विषयों में एक वारगी। अभक्ष्य मांस के समान घिन उत्पन्न होती॥

भावार्थ—इस महात्मा ने पूर्व जन्म में बहुत काल तक महादेव जी के चरण कमलों की सेवा की है नहीं तो क्यों एक वारगी विषयों पर अर्थात् कर्ण नेत्र आदि इन्द्रियों की गीत सुन्दर रूप आदि वस्तुओं पर जैसे बुरी मांस पर घिन उत्पन्न होती है वैसी घिन इन के मन से उत्पन्न होती ॥ २४ ॥

चिरकालमुपासनां विना जगदीशस्य पदारविन्दयोः। घटते च न जात्वधिक्षिति क्षितिभृन्मण्डलमण्डिताङ्घ्रिता ॥ २५ ॥

अन्वयः—चिरकालम् जगदीशस्य पदारविन्दयोः। उपासनाम् विना अधिक्षिति। क्षितिभृन्मण्डलमण्डिताङ्घ्रिता च जातु न घटते ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—वहुत काल तक परमेश्वर के चरण कमलों की। सेवा के विना पृथ्वी पर। राजा लोगों के मण्डल से चरणों की शोभा का होना भी कधी नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

भावार्थ—वहुत काल तक परमेश्वर के चरण कमलों की सेवा के विना इस पृथ्वी पर राजा लोगों के समूह से यतीन्द्र जी के चरणों की शोभा (सेवा) का होना भी कधी नहीं हो सकता ॥ अर्थात् स्वामी जी ने पूर्व जन्म में वहुत काल तक ईश्वर की सेवा किया था उसी का फल यह है जो राजा लोग स्वामी जी के चरणों की सेवा करते हैं ॥ २५ ॥

इह चेदवदत् पतञ्जलि र्दृढ वैराग्य फलान्यमून्यपि। विवदामि न तेन यत् स्वयम् परमं कारणमीशमाह सः ॥ २६ ॥

अन्वयः—इह पतञ्जलिः अमून्यपि। दृढवैराग्यफलानि अवदत् चेत्। तेन

न विवदामि । यत् स्वयम् सः ईशम् परमम् कारणम् आह ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—इस (विषय) में पतञ्जलि ऋषि ने उन सवों को भी। दृढ वैराग्य का फल कहा है तो भी । उनके साथ विवाद नहीं करते। क्योंकि वह आप भी परमेश्वर को सव का परम कारण कहते हैं ॥ २६ ॥

भावार्थ—इस विषय में योगशास्त्र के आचार्य पतञ्जलि भगवान ने " अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् " इत्यादि सूत्रों में कहा है कि दृढ वैराग्य के होने पर ये सव उक्त ऐश्वर्य आदि फल आप ही प्राप्त होते हैं तो भी उनके साथ विवाद नहीं करते क्योंकि उन्हों ने आप ही " क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" इस सूत्र से सव का मुख्य कारण ईश्वर को ही माना है। अर्थात् विना ईश्वर की कृपा वैराग्य भी नहीं हो सकता ॥२६॥

वहवो भुवि सन्ति भावुका वहवः पण्डितमण्डलीवराः । सदसत्प्र-

विवेकधीगुणो विदुषोऽस्यैव तु
दृक्पथं गतः ॥ २७ ॥

अन्वयः—भुवि बह्वः भावुकाः । बहवः पण्डितमण्डलीवराः सन्ति । तु अस्य एव विदुषः । सदसत्प्रविवेकधीगुणः दृक्पथम् गतः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—पृथ्वी पर वहुत से अच्छे आचरण करने वाले । और वहुत से पण्डित मण्डली में श्रेष्ठ (लोग) हैं । परन्तु इसी विद्वान् का । सत् और असत् का अलगाने वाला वुद्धि का गुण देखने में आया है ॥ २७ ॥

भावार्थ—संसार में वहुत से मङ्गल आचरण करने वाले लोग हैं और वहुत से पण्डितों की मण्डली में भी श्रेष्ठ मनुष्य हैं परन्तु अच्छे और वुरे का विचार करने वाला वुद्धि का गुण इसी महात्मा का देखा गया है ॥ २७ ॥

स रहो निवसन् दिवानिशं मन-

सेदं परितो व्यभावयत्। निरधारयदाशु तत्त्वतो जगदज्ञानविलाससम्भवम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—स रहो निवसन् दिवानिशम्। मनसा इदम् परितः व्यभावयत्। जगत् तत्त्वतः अज्ञानविलाससम्भवम् (इति) आशु निरधारयत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—उस (महात्मा) ने एकान्त में स्थित हो रात दिन। मन से इसे सब ओर से विचारा। (और) जगत यथार्थ रूप से अज्ञान के फैलाव से उत्पन्न हुआ है यह शीघ्र निश्चय किया ॥ २८ ॥

भावार्थ—उस महात्मा ने एकान्त में स्थित होकर रात दिन मन में इसे बहुत विचारा। और विचार कर अन्त को यह निश्चय किया कि यथार्थ में यह जगत् अज्ञान की लीला से उत्पन्न है ॥ २८ ॥

यदि नित्यमिदम् भवेत् पुरतो

भूतिनिरोधभृत् कथम् । क्षिति रप्युभयीयुतैव किं न भवेत् सा-वयवत्त्वहेतुतः ॥ २९ ॥

अन्वयः-यदि इदम् जगत् नित्यम् भवेत् (तर्हि) कथम् पुरतः भूतिनि-रोधभृत् । क्षितिः अपि सावयवत्त्वहेतु-तः । उभयीयुता एव किम् न भवेत् ॥

शब्दार्थ-जो यह जगत् नित्य होता । (तो) क्यों प्रत्यक्ष ही उत्पत्ति और नाश का धारण करने वाला होता । (और) पृथिवी भी अव-यव सहित है इस हेतु से दोनो से युक्त (अर्थात् उत्पत्ति और नाश वाली) ही क्यों न होवे ॥

भावार्थ—यतीन्द्र जी के विचार का यह स्वरूप है। कि जो यह संसार नित्य है तो प्रत्यक्ष ही उत्पत्ति और नाशवाला क्यों है । अर्थात् जीवों की वृक्षों की उत्पत्ति और नाश प्रत्यक्ष देखा जाता है इस से जगत् नित्य नहीं हो सकता। इस पर यह शङ्का होती है कि प्रत्यक्ष नाश और उत्पत्ति तो घट पट

आदि छोटे पदार्थों की देख पड़ती है पृथिवी आदि महाभूतों की नहीं इस से लघु पदार्थ तो चाहे अनित्य हों पर पृथ्वी आदि महाभूत संज्ञक जगत् अनित्य नहीं है। यतीन्द्र जी के विचार में इस शङ्का का यह उत्तर है। कि जो जो अवयव वाले हैं सब उत्पत्ति और नाश वाले हैं जैसे वृक्ष आदि॥ और वृक्षों की उत्पत्ति और नाश प्रत्यक्ष है तो इसी युक्ति से महाभूत पृथिवी आदि भी अवयव वाले हैं इनकी भी उत्पत्ति और नाश अवश्य होता है इस प्रकार से जगत् अनित्य ठहरता है॥ २९॥

अथ जातमिदं विभाव्यते सत उत्पत्तिमवैषि वाऽसतः। उभयस्य न चास्ति सम्भवश्चिति वा खस्त्रजि वापि बाधतः॥ ३०॥

अन्वयः—अथ इदम् जातम् विभाव्यते (तर्हि कथय)। सतः उत्पत्तिम् वा असतः (उत्पत्तिम्) अवैषि। चिति वा खस्त्रजि वापि बाधतः। उभयस्य सम्भवः न अस्ति॥ ३०॥

शब्दार्थ—जो इस (जगत) को उत्पन्न मानते हो (तो कहो)। सत् की उत्पत्ति को अथवा असत् की (उत्पत्ति) को मानते हो। पुरुष की और आकाश के फूलों की उत्पत्ति बाधित है इस कारण। सत् और असत् दोनों की उत्पत्ति नहीं बन सकती ॥ ३० ॥

भावार्थः—जो जगत् उत्पन्न होता है यह मानते हो तो कहिये यह जगत्, सत् अथवा असत् इन दोनों में कौन है ? जो जगत् को सत् मानो तो जगत् अपनी उत्पत्ति के पहिले भी बना रहे तो सत् हो सकता है ॥ जो वस्तु अपनी उत्पत्ति के पहिले भी है उस को उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? जो सांख्य शास्त्र के अनुसार कहिये कि सब कार्य्य अपने कारणों में सूक्ष्म रूप से लीन रहते हैं। और क्रिया विशेष से प्रगट हो जाते हैं। जैसे तिल में तेल पहिले से हैं पर तेली की क्रिया विशेष से प्रगट हो जाता है। कोई और नया उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार जगत् पहिले अपने कारणों में सूक्ष्म रूप से लीन था पीछे उत्पन्न हुआ है इस प्रकार जगत् सत् भी है और उत्पन्न भी होता है ॥ यह सांख्य शास्त्र के अनुसार जो कथन है सो ठीक नहीं है क्योंकि सांख्य के इस सिद्धान्त से यह नियम सिद्ध हुआ कि जितने

सत् हैं वे उत्पन्न होते हैं। और सांख्यशास्त्र ही पुरुष के। सत् मानता है पर उत्पत्ति उस की नहीं मानता क्योंकि वह कहता है कि चित् अर्थात् पुरुष न किसी का कार्य है न कारण है। "न प्रकृति र्न विकृतिः पुरुषः" इस प्रकार अपने नियम के। सांख्य ही ने भंग किया इस से इस नियम द्वारा सत् जगत् उत्पन्न होता है यह नहीं कह सकते॥ अब जो यह कहिये कि यह जगत् उत्पत्ति के पहिले न रहने से असत् है और कारण द्वारा उत्पन्न होता है यह न्याय शास्त्र का मत है। क्योंकि न्याय मत में कार्य पहिले नहीं रहता अर्थात् असत् है कारण व्यापार के अनन्तर उत्पन्न होता है। और कारण उसी के। कहते हैं जो कार्य का नियत पूर्ववर्ती हो॥ इस मत के। भी सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। कारण के पहिले न रहने से कार्य मात्र असत् ठहरे वेही कारण व्यापार के उपरान्त उत्पन्न होते हैं। इस से यह नियम सिद्ध हुआ कि असत् उत्पन्न होता है। इस नियम के अनुसार असत् आकाश पुष्प की उत्पत्ति होनी चाहिये और होती नहीं। तो उक्त नियम भंग हुआ इस से न्याय मत भी उत्पत्ति के विषय में मानने के योग नहीं है॥ ३०॥

कथमस्ति च कारणार्थना यदि

भूतेः पुरतो ऽपि सद् भवेत्। नहि भालविशालदृग् घरः स्वललाटे नयनं विधित्सति ॥ ३१ ॥

अन्वयः—यदि च भूतेः पुरतः अपि सद् भवेत्। (तर्हि)। कथम् कारणार्थना अस्ति। हि भालविशालदृग् हरः। स्वललाटे नयनम् न विधित्सति ॥३१॥

शब्दार्थ—जो उत्पत्ति के पहिले भी सत् होता हो। (तो) क्यों (कार्यार्थी लोगों को) कारण की इच्छा होती। क्योंकि माथे में विशाल नेत्रधारी महादेव जी। अपने मस्तक में नेत्र बनाना नहीं चाहते ॥ ३१ ॥

भावार्थ—यतीन्द्र जी का यह विचार है कि जो कार्य के सत् मानते हैं उन से यह और पूछना है कि जो कार्य उत्पत्ति के पहिले भी सत् है तो कार्य के चाहने वाले लोग कारण की इच्छा क्यों करते हैं। क्योंकि जो वस्तु पहिले से रहती है उस की उत्पत्ति के लिये कोई भी जतन नहीं करता देखो जिन

के मस्तक में तीसरा वड़ा नेत्र है वह महादेव जी क्या मस्तक में नेत्र वनाने की इच्छा करते हैं अर्थात् कधी नहीं॥ सत् की उत्पत्ति मानने वाले तो कारण की चाह करते हैं इस से सत् की उत्पत्ति ठीक नहीं हो सकती॥

अथ चेत् सदपि प्रकाशितं करणैः कर्त्तुमिहेहते जनः । नियमात् सति जन्म तेऽस्ति तत् कथमाविर्भवनम् न सद् भवेत् ॥३२॥

अन्वयः—अथ इह जनः सत् अपि करणैः । प्रकाशितम् कर्त्तुम् ईहते चेत् । ते (मते) नियमात् सति जन्म अस्ति । तत् आविर्भवनम् कथम् सत् न भवेत्॥

शब्दार्थ—जो इस पर (कोई यह कहै कि) मनुष्य सत् को भी क्रिया द्वारा । प्रकाशित करने का जतन करता है तो । (उस से पूछना चाहिये कि) तुम्हारे (मत में) नियम से सत् का ही जन्म है । इस से वह प्रकाशित होना भी सत् क्यों न हो ॥ ३२ ॥

भावार्थ—यहां पर जो कोई कहे कि कार्य सत् है अपनी उत्पत्ति के पहिले से रहता है परन्तु पहिले वह अपने कारण में सूक्ष्म रूप से लीन रहता है इसी से उस के प्रकाश (प्रगट) करने के लिये जतन किया जाता है जैसे दही में घी पहिले से है पर तो भी उस के निकालने के लिये मथना पड़ता है । सो यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि उस के मत में यह सिद्धान्त है कि "असत् उत्पन्न ही नहीं होता" । इसी से उस प्रकाश (प्रकट) क्रिया को भी सत् और पहिले ही से होना चाहिये जो वह कहे कि हां! वह प्रकाश होना भी सूक्ष्म रूप से अपनी उत्पत्ति के पहिले से था पर उस प्रकाश के प्रकाश (प्रकट) करने के लिये यह दूसरा जतन किया जाता है। तो भी शङ्का बनी रहेगी क्योंकि दूसरे प्रकाश करने को भी सत् और अपनी उत्पत्ति के पहिले होना चाहिये इस से उस दूसरे प्रकाश के प्रकाश करने के लिये तीसरा जतन होना चाहिये इसी प्रकार एक कार्य की उत्पत्ति में अनन्त प्रकाश के अर्थात् प्रगट क्रिया के प्रवेश करने से भी इसी प्रकार फिर शंका उत्पन्न होती जायगी शंका शान्त न होगी और अनवस्था बनी रहेगी ॥ ३२ ॥

असतोऽपि तथा विचारणे न च सुस्था भविता जनिक्रिया । वद

दण्डमृदादितः कुतो घट उत्पद्यत एव नो पटः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—विचारणे च तथा असतः अपि । जनिक्रिया सुस्था न भविता । वद दण्डमृदादितः । घटः एव कुतः उत्पद्यते पटः नो (उत्पद्यते) ॥३३॥

शब्दार्थ—विचार करने में तो इसी प्रकार असत् की भी । उत्पत्ति ठीक नहीं होती। कहो दण्ड और मिट्टी आदि से। घड़ा ही क्यों उत्पन्न होता है पट क्यों नहीं (उत्पन्न होता) ॥३३॥

भावार्थ—विचारने में तो जैसे सत् की उत्पत्ति ठीक नहीं है इसी प्रकार असत् की भी उत्पत्ति ठीक नहीं हो सकती क्योंकि जो असत् ही उत्पन्न होता है तो कहिये कि डण्डा मिट्टी चाक आदि से घड़ा ही क्यों बनता है कपड़ा क्यों नहीं बन जाता क्योंकि दण्ड मिट्टी आदि कारणों में घड़ा कपड़ा ये दोनो असत् हैं । जो कार्य को सत् मानते हैं वे तो यह कह भी सकते हैं कि घड़ा अपने कारण मिट्टी में सूक्ष्म रूप से विद्यमान था कुम्हार की क्रिया से

उपन्न हो गया । असत् की उत्पत्ति मानने वाले तो इस बात को नहीं कह सकते क्योंकि मिट्टी में घट पट आदि सब असत् हैं अपनी उत्पत्ति के पहिले कोई भी न था ॥ ३३ ॥

यदि शक्तिविशेष इष्यते स च कार्येण विशेष्यते न वा । प्रथमे त्वसता कथं तथा चरमे तेन कथं व्यवस्थितिः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—यदि शक्तिविशेषः इष्यते । स च कार्येण विशेष्यते वा न विशेष्यते । प्रथमे तु असता तथा कथम् । चरमे तेन व्यवस्थितिः कथम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—जो (कारणों में) विशेष शक्ति रहती है यह मानो । (तो पहिले श्लोक का दूषण दूर हुआ पर)। वह शक्ति कार्य के साथ सम्बन्ध रखती है, अथवा नहीं । पहिले में तो (यह दूषण है कि) असत् के साथ सम्बन्ध कैसे ।

अन्त पक्ष में तो उस से व्यवस्था कैसे (हो सकती है) ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो कहिये कि कारणों में कोई विशेष शक्ति रहती है । इसी सवव से मिट्टी आदि कारणों से घड़ा ही उत्पन्न होता है । और कपड़ा नहीं उत्पन्न हो जाता। तो यह भी बताइये कि उस विशेष शक्ति से कार्य से कुछ सम्बन्ध है ? वा नहीं ॥ जो सम्बन्ध है यह कहिये । सो ठीक नहीं है । क्योंकि सम्बन्ध वह पदार्थ है जो अपने दोनो सम्बन्धियों के विना हो नहीं सकता । इस कारण असत् कार्य के साथ सत् शक्ति का सम्बन्ध हो नहीं सकता । इस पर जो कहिये कि शक्ति से कार्य से कुछ सम्बन्ध नहीं सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब कार्य से सम्बन्ध नहीं है तो मिट्टी से वस्त्र आदि भिन्न भिन्न कार्य उत्पन्न हो जायँगे । मिट्टी से घड़ा सूत से कपड़ा उत्पन्न होता है यह व्यवस्था न रह जायगी॥

इति चिन्तितमेव सूरिभिः प्रथमाचार्यवरै रनेकधा । न कथञ्चन युक्तिसिद्धता जगदुत्पत्तिगता ऽवतिष्ठते ॥ ३५ ॥

अन्वयः—प्रथमाचार्यवरैः सूरिभिः इति अनेकधा चिन्तितम् एव । कथञ्चन जगदुत्पत्तिगता युक्तिसिद्धता न अवतिष्ठते ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—पूर्व आचार्यों में श्रेष्ठ पण्डितों ने इसे अनेक प्रकार से विचारा है। किसी प्रकार जगत की उत्पत्ति युक्ति सिद्ध नहीं होती ॥ ३५ ॥

भावार्थ—इस बात के पहिले आचार्यों ने बहुत विचारा है । अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है । जगत् की उत्पत्ति युक्ति सिद्ध नहीं होती। क्योंकि जो जगत् की उत्पत्ति मानेगा वह कार्य को सत् वा असत् अवश्य मानेगा। जो दोनों मतों को पृथक् २ विचार करके देखते हैं । तो जगत् की उत्पत्ति में बहुत से दोष आते हैं । ठीक २ उत्पत्ति नहीं बन सकती । केवल माया ही का विस्तार देख पड़ता है ॥ ३५ ॥

कणभक्षमतं यदीक्ष्यते न विचारं सहते तदण्वपि । परमाणु

मयं हि कारणं जगतो वक्ति न चास्य सम्भवः ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यदि कणभक्षमतम् ईक्ष्यते । तद् विचारम् अणु अपि न सहते। हि अयम् परमाणुं जगतः कारणम् वक्ति । अस्य च सम्भवः न ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—जो कणाद ऋषि के मत को देखते हैं (तो)। वह विचार को थोड़ा भी नहीं सह सकता। क्योंकि यह ऋषि परमाणु को जगत् का कारण कहता है। और यह हो नहीं सकता ॥ ३६ ॥

भावार्थ—जो युक्ति प्रधान कणाद ऋषि के वैशेषिक शास्त्र को देखते हैं। तो वह शास्त्र भी सृष्टि विषयक अन्त के विचार को कुछ भी नहीं सह सकता। क्योंकि वैशेषिक मत में परमाणु जगत का कारण माना गया है। और इस सिद्धान्त में ३१वें श्लोक में कहा हुआ दोष बड़ा दोष है। इस से परमाणु से भी जगत् की उत्पत्ति ठीक नहीं है ॥

रहितो ऽवयवैः स इष्यते सति योगे च तयोः शिवेच्छया । द्व्यणुकक्रमतो जगद् भवेदिति काणादमतं व्यवस्थितम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सः अवयवैः रहितः इष्यते । शिवेच्छया च तयोः योगे सति । द्व्यणुकक्रमतः जगद् भवेत् । इति काणादमतम् व्यवस्थितम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—वह (परमाणु) अवयवों से रहित माना गया है । शिव जी की इच्छा से दो परमाणुओं के योग होने से । द्व्यणुक होता है इसी क्रम से जगत् उत्पन्न होता है । यह कणाद ऋषि का मत स्थित है ॥ ३७ ॥

भावार्थ—क्योंकि कणाद ऋषि के मत में स्थूल, पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चार द्रव्यों के आदि कारण चार प्रकार के परमाणु हैं। ये परमाणु अवयव रहित हैं । अर्थात् इतने छोटे हैं कि इन के

अवयव हो ही नहीं सकते। ईश्वर की इच्छा से ये परमाणु आपस में मिल जाते हैं। दो परमाणु के मिलने से द्व्यणुक होता है। और अधिकों के मिलने से त्रिसरेणु होता है। इसी क्रम से स्थूल पृथिवी आदि जगत् उत्पन्न होता है। यह कणाद ऋषि जी का मत है ॥ ३७ ॥

परमत्र विचार्यतामिदं परमाणावणुकान्तरस्य यत् मिलितम्। सकलाश्रयेऽस्ति किं तदुतैकान्तगतं समिष्यते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—परम् अत्र इदम् विचार्यताम्। परमाणौ अणुकान्तरस्य यत् मिलितम्। तत् किम् सकलाश्रये अस्ति। उत एकांशगतम् समिष्यते ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—परन्तु यहां यह विचारना चाहिये (कि)। परमाणु के साथ दूसरे परमाणु का जो मेल है। वह क्या सर्वांश में है ?। अथवा एकांश में माना जाता है ? ॥ ३८ ॥

भावार्थ—लेकिन कणाद जी के इस मत में यह विचारो कि एक परमाणु के साथ दूसरे परमाणु का जो मिलना अर्थात् संयोग है वह क्या सर्वांश से संयोग है अथवा एक अंश से संयोग है क्या माना जाता है? वस्तुतः उन के मत के विचार करने के लिये यह पूछा जाता है सिद्धान्त में तो जितने संयोग हैं सो सब एकांश गत होते हैं। परमाणु में अंश नहीं है तो किस प्रकार का इन का संयोग हुआ यही प्रश्न का अभिप्राय है ॥ ३८ ॥

यदि पूर्वमुदीरितं मतं किमु लीनं न परस्परं तयोः। अणुता न विमोक्ष्यते जगत् मनसेदं निपुणं निरीक्ष्यताम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—यदि पूर्वम् उदीरितम् मतम्। किमु तयोः परस्परम् न लीनम्। (अवश्यं लीनं, तदा) जगत् अणुताम् न विमोक्ष्यते। मनसा इदम् निपुणम् निरीक्ष्यताम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ—जो पहिले कहा हुआ मत होय (तो)। क्यों वे दोनो (परमाणु) एक दूसरे में लीन नहीं हुए? (अवश्य लीन होंगे)। (तब) जगत् अणुता को नहीं छोड़ सकता। मन से इसे खूब विचारो ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो उक्त दोनो पक्षों मे पहिला पक्ष मान लिया जाय। अर्थात् परमाणु का सर्वांश से दूसरे परमाणु से संयोग होता है। तो इस पक्ष में एक परमाणु में दूसरा परमाणु अवश्य लीन हो जाना चाहिये। सो क्यों न लीन हुआ? जो लीन हो गया यह मानो। तो परमाणुसंयोग से उत्पन्न जगत्, परमाणु से बड़ा न होना चाहिये। क्योंकि जितने संयोग हैं वे कोई भी सर्वांश से नहीं होते। जैसे दो ईंटों का संयोग एक ओर से है और शेष भाग उसका संयुक्त नहीं है इसी से ईंटों के संयोग से इतनी बड़ी भीत हो जाती है। इसी प्रकार सूत्रों का भी संयोग आपस में एक ओर से है और शेष भाग बच रहा है। इसी कारण सूत्रों के संयोग से इतना लम्बा चौड़ा वस्त्र हो जाता है परन्तु आप के मत में परमाणु निरवयव हैं। इस कारण उक्त ईंट सूत के संयोग के समान परमाणु का संयोग कह नहीं सकते। सर्वांश से संयोग मानना पड़ा।

यद्यपि सर्वांश यह शब्द परमाणु के विषय में नहीं कह सकते क्योंकि परमाणु अवयव रहित और अंश रहित हैं। पर सर्वांश इस शब्द से इतना ही कहा चाहते हैं। कि परमाणु, संयोग से वचा नहीं रह सकता ॥ ते एक दूसरे में अवश्य लीन हुआ यह सिद्ध हुआ । अब परमाणु के संयोग से उत्पन्न जगत् परमाणु से वड़ा किसी प्रकार नहीं हो सकता। और जगत् वहुत वड़ा प्रत्यक्ष दीख पड़ता है। इस से यह उक्त मत ठीक नहीं है। इसे विद्वान् लोग विचारें ॥ ३९ ॥

अथ चेदपरं मतं वदेः क गता सांशविहीनतास्य ते। इयमेव च दोषभावनाऽवयवे ष्वप्यणुता कृ-ता ऽऽव्रजेत् ॥ ४० ॥

अन्वयः—अथ अपरम् मतम् वदेः चेत्। ते अस्य सा अंशविहीनता क गता। अवयवेषु अपि अणुकृता । इयम् एव दोषभावना आव्रजेत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—जो तुम दूसरा मत कहते हो तो। तुम्हारे (मत में) परमाणु का अवयव रहित होना कहां गया। परमाणु के अवयवों में भी (संयोग मानने से) छोटे पन से उत्पन्न। यही दोष आ पड़ेगा ॥ ४० ॥

भावार्थ—जो दूसरा पक्ष अर्थात् परमाणु के अवयवों में संयोग होता है यह माना जाय तो परमाणु के अवयव नहीं होते यह सिद्धान्त नष्ट हो जाता है। वरन परमाणु का सिद्ध होना ही कठिन दीखता है तिस पर भी वही दोष अर्थात् परमाणु के अवयव जो दूसरे परमाणु के अवयव से मिलते हैं वे सर्वांश से मिलते हैं वा एकांश से ? इन में एक परमाणु के अवयव दूसरे परमाणु के अवयव में लीन क्यों न हुए अवश्य लीन होंगे तो उन अवयवों के संयोग से उत्पन्न जगत् अवयवों से बड़ा कभी नहीं हो सकता। अर्थात् परमाणु के संयोग से उत्पन्न ही छोटा था अब तो परमाणु के अवयवों के संयोग से उत्पन्न जगत् परमाणु के अवयव से बड़ा किसी प्रकार नहीं हो सकता इस प्रकार इस मत में छोटेपने का दोष लगा रह जाता है ॥ ४० ॥

यदि सोऽप्यपरांशयुग् भवेदन-

वस्था विपुला तदा गता । वि-
निवारयिता कथं भवान् समतां
मेरुकनीनिकांशयोः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—यदि सः अपि अपरांश-
युग् भवेत्। तदा विपुला अनवस्था आ-
गता। भवान् मेरुकनीनिकांशयोः। सम-
ताम् कथम् विनिवारयिता ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—जो वह (परमाणु का अवयव) भी
और अवयव से युक्त हो। तो बड़ी अनवस्था
आ पड़ेगी। और आप सुमेरु पर्वत और आंख
की पुतली के अंशों की बराबरी को कैसे वारण
करेंगे ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जो परमाणु के अवयव के भी अवयव
हैं यह मान लिया जाय तो किसी को तो अवयव
रहित मानिये गा तब वे ही उक्त दोष आ पड़ेंगे। जो
किसी को भी अवयव रहित न मान कर अवयव
के अवयव हैं इसी प्रकार कहते चले जाइये गा तो
अनवस्था बनी रहेगी और सुमेरु पर्वत की और

आंख की पुतली के अंश की बराबरी हो जायगी क्योंकि अनगिनती अवयव दोनों में ठहरे इस दोष को आप कैसे वारण करेंगे ॥ वस्तुतः पदार्थों के छोटे और बड़े मानने में उन के परमाणु की अल्पता और अधिकता ही कारण होती है। और आप अवयव के अवयव २ इसी प्रकार कहते चले जाते हैं। इसी प्रकार सुमेरु पर्वत और आंख की पुतली दोनों के अंशों के अनन्त अवयव ठहरे किसी के अवयव का अन्त न हुआ तो दोनों के अंश आपस में अनन्त अवयवत्त्व रूप धर्म से तुल्य सिद्ध हुए। इतने लघु की इतने बड़े के साथ तुलना होजाना यह एक बड़ा दोष है टल नहीं सकता इस से यह मत्त ठीक नहीं है ॥ ४१ ॥

इति नावसरो गिरामिह प्रभवेत् किं त्वभिमानमात्रतः। विवदिष्यत एव चेद् यथारुचि भाषस्व वशा निजा हि वाक् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—इति इह गिराम् अवसरः न प्रभवेत्। किन्तु अभिमानमात्रतः वि-

वदिष्यते एव चेत्। यथारुचि भाषस्व हि निजा वाक् वशा ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ—इस प्रकार इस विषय में बोलने का अवसर नहीं है। लेकिन केवल अभिमान से विवाद करने ही की इच्छा हो तो। अपनी रुचि के अनुसार कहो क्योंकि अपनी वाणी अपने वश में है ॥ ४२ ॥

भावार्थ—कहे हुए कारणों से इस विषय में कुछ भी बोलने की जगह नहीं है। हां जो केवल अहंकार से ही विवाद किया चाहो तो करो क्योंकि अपनी जीभ अपने वश में है ॥ ४२ ॥

चरणाक्षमतेऽपि तादृशं न निवृत्ता वचनीयताऽस्ति सा। स हि वस्तुविचारणे कृते कचिदेवाऽस्ति कणादतोऽन्यथा ॥ ४३ ॥

अन्वयः—चरणाक्षमते अपि (सर्वम्) तादृशम्। (अतः) सा वचनीयता

निवृत्ता न अस्ति। वस्तुविचारणे हि कृते। सः क्वचित् एव कणादतः अन्यथा अस्ति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ—गौतम जी के मत में भी (सब) वैसा ही है। (इस से) वह दोष निवृत्त नहीं होता। वस्तु के विचार करने पर तो। वह कहीं २ कणाद ऋषि से और प्रकार का है॥४३॥

भावार्थ—चरण में है नेत्र जिन के ऐसे गौतम जी के मत में भी प्रायः सब कणाद ऋषि के मत के समान है। इस से उक्त वह दोष टल नहीं सकता अर्थात् अवश्य लगता है। क्योंकि वस्तु को जब विचारते हैं तो दोनों ऋषियों के मत में कहीं २ थोड़ा सा अन्तर है शेष दोनों मत में एकसा है॥४३॥

कलया गणितान ऽबूबुधत् स पदार्थान् कणभुक् च सप्त तान्। पदहक् तु कथाङ्गसंग्रहं कुरु- ते ऽन्यस्तु लघुत्वलालसः ॥४४॥

अन्वयः—सः (गौतमः) कलया गणितान् पदार्थान् अबूबुधत्। कणभुक् च तान् सप्त (अबूबुधत्)। पदद्रूक् तु कथाङ्ग सङ्ग्रहम् कुरुते। अन्यः तु लघुत्वलालसः अस्ति ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—उस (गौतमऋषि) ने सोलह से गिने गए पदार्थों को माना है। कणाद जी ने उन सोलहों को सात कहा है। चरणाक्ष जी कथा के अङ्गों का सङ्ग्रह करते हैं। और दूसरे कणाद जी तो लाघव की लालसा रखते हैं॥४४॥

भावार्थ—गौतम भगवान ने केवल सोलह पदार्थ हैं यह कहा है। कणाद ऋषि ने ये सोलहों सात के भीतर आजायंगे यह विचार सात ही पदार्थ हैं यह लिखा है। गौतम भगवान ने नास्तिकों के साथ विचार करने में तत्त्व का निर्णय और जय पराजय की व्यवस्था ठीक २ होवे क्योंकि कथा के अङ्गों का ठीक २ संशोधन न होने से नास्तिक लोग अन्याय से कोलाहल कर अपना विजय मान लेते थे इस लिये वाद जल्प वितण्डा इन तीनों कथा के अङ्गों का पृथक् २ वर्णन किया है वस्तुतः ये सब प्रमेय

के भीतर आजाते हैं इसी विचार से कणाद जी ने उन पदार्थों को संक्षेप के लिये सात माना है इस मत में एक पदार्थ में दूसरे का अन्तर्भाव नहीं होता इतना ही भेद है पर और सब एक सा है ॥ ४४ ॥

अथ कापिलमप्य ऽवेक्ष्यते मत-
मत्रास्ति सतः कृतिस्तु या । पुर-
तो मथितैव सा त्विहा ऽपरमप्य-
स्ति विवक्षितं विदाम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—अथ कापिलम् अपि मतम् अवेक्ष्यते । अत्र तु या सतः कृतिः सा पुरतः मथिता एव । तु विदाम् इह अपरम् अपि विवक्षितम् अस्ति ॥४५॥

शब्दार्थ—अब कपिल जी का मत विचारा जाता है । इस में जो सत् (पदार्थ) की उत्पत्ति है वह पहिले ही खण्डन की गई है । परन्तु विद्वानों को इस मत पर और भी कुछ कहना है ॥

भावार्थ—अब कपिलदेव जी के साङ्ख्य शास्त्र

की परीक्षा की जाती है इस शास्त्र का जो सत् कार्य वाद है इस का खण्डन पहिले ३० से ३५ तक के श्लोकों से हो चुका है। लेकिन सत् कार्य वाद से भिन्न जो साङ्ख्य के सिद्धान्त हैं उन पर भी विद्वानों को वहुत कुछ कहने की इच्छा है ॥ ४५ ॥

जगतः किल कारणं परं प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमोमयी । अनपेक्ष्य चितोन्तराशयं मतमेतत् कपिलस्य सम्मतम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—चितः अन्तराशयम् अनपेक्ष्य। सत्त्वरजस्तमोमयी प्रकृतिः। जगतः परम् कारणम् किल। एतत् मतम् कपिलस्य सम्मतम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—पुरुष की इच्छा की चाह न कर के। सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण वाली प्रकृति। जगत् की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। यह मत कपिल देव जी को सम्मत है ॥ ४६ ॥

भावार्थ—ईश्वर की इच्छा के विना अर्थात् स्वतन्त्र होकर सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण स्वरूप वाली जड़ प्रकृति जगत की उत्पत्ति में मुख्य कारण है। अर्थात् ईश्वर कुछ नहीं करता, वह किसी का कारण नहीं है प्रकृति आप ही जगत् को उत्पन्न करती है यह कपिल देव जी का मत है ॥ ४६ ॥

विदुषा स्वधिया निरीक्ष्यता ज-
ड़मात्रम् मतिमन् महीपवत् ।
कमलोद्भववच्च पालयेद् विदधी-
ताऽप्यखिलाः प्रजा इमाः ॥४७॥

अन्वयः—जड़मात्रम् इमाः अखिलाः अपि प्रजाः । कमलोद्भववद् विदधीत। मतिमन् महीपवत् पालयेत् च। इति विदुषा स्वधिया निरीक्ष्यताम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—जड़मात्र (प्रकृति) इन सब ही प्रजाओं को। ब्रह्मा जी के समान उत्पन्न करे। और बुद्धिमान् राजा के तुल्य पाले। यह विद्वानों से अपनी बुद्धि से विचारा जाय ॥४७॥

भावार्थ—इसे विद्वान लोग एकाग्र चित्त हो अपनी बुद्धि से विचारें कि जड़ स्वभाव प्रकृति इन सब चैतन्य प्रजाओं को भी ब्रह्मा जी के समान सृजती है और बुद्धिमान राजा के समान पालती है यह कभी हो सकता है? अर्थात् कभी नहीं॥ क्योंकि लोक में यह नियम प्रत्यक्ष है कि गोहूं से गोहूं और चना से चना उत्पन्न होता है अर्थात् जड़ से जड़ उत्पन्न होता है और भिन्न स्वभाव वाला नहीं उत्पन्न होता तो जड़ स्वभाव वाली प्रकृति चित् पुरुष की सहायता के विना कभी नहीं चैतन्य स्वभाव वाले मनुष्य आदि जीवों को उत्पन्न कर सकती। इसे एकाग्रचित्त से विचारना चाहिये॥

इति विश्वसितु क्षितौ जनः कतमो लोकविलोकजातधीः। प्रविहाय तु शैशवात् परम् प्रकृताचार्यवचो विमोहितम् ॥४८॥

अन्वयः—शैशवात् परम् प्रकृताचार्यवचो विमोहितम् प्रविहाय तु। क्षितौ लोकविलोकजातधीः कतमः जनः इति विश्वसितु। (न कोऽपि इति शेषः)॥

शब्दार्थ—बाल अवस्था के उपरान्त ही साङ्ख्य आचार्य के वचनों से जो मोहित हो रहा है उस के सेवाय। पृथिवी पर संसार के देखने से उत्पन्न हुई है बुद्धि जिसे ऐसा कौन मनुष्य है जो इसे विश्वास करे। (अर्थात् कोई भी बुद्धिमान विश्वास नहीं कर सकता) ॥ ४८ ॥

भावार्थ—बाल अवस्था के अनन्तर ही साङ्ख्य शास्त्राचार्य के वचनों के सुनने से जिसे मोह उत्पन्न हो रहा है ऐसे मनुष्य को छोड़ संसार में ईश्वरीय अद्भुत चमत्कार के देखने से जिस की उत्तम बुद्धि हो रही है ऐसा कौन सा मनुष्य है जो जड़ स्वभाव प्रकृति सब करती है अर्थात् चैतन्य जीव तक को भी उत्पन्न करती है इसे विश्वास करेगा? वरन इस को कोई भी बुद्धिमान विश्वास नहीं कर सकता ॥ ४८ ॥

यद वोचदयं पयोजनि जडतो-
ऽप्यस्ति शिशो विवृद्धये। कथ-
मास्तिकता सहेत तत् परमेशो
हि ततो ऽवबुध्यते ॥ ४९ ॥

अन्वयः—अयम् शिशोः विवृद्धये ज-ड़तः अपि । पयोजनिः अस्ति (इति) यद् अवोचत् । आस्तिकता तत् कथम् सहेत । हि ततः परमेशः अवबुध्यते ॥

शब्दार्थ—इस (साङ्ख्य के आचार्य) ने लड़कों के पोषण के लिये जड़ से भी । दूध उत्पन्न होता है (यह) जो कहा है । आस्तिक बुद्धि इस को कैसे सह सकती है । क्योंकि इन्ही बातों से परमेश्वर जाना जाता है ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जड़ आप ही बिना किसी की प्रेरणा के कार्य करता है इस में साङ्ख्य वालें ने यह दृष्टान्त दिया है कि गौ सब दिन तृण आदि खाती है पर सदा वह तृण आदि जड़, दूध नहीं हो जाता है जब बच्चा होता है तब ही वही जड़ तृण आप दुग्ध रूप हो जाता है । इस से सिद्ध हुआ कि जड़ प्रकृति दूसरे की प्रेरणा के विना भी आप ही कार्य करती है पर इस बात के आस्तिक बुद्धि किस प्रकार मान सकती है अर्थात् न मानेगी ॥ क्योंकि ऐसे ही चम-त्कारों से ईश्वर जाना जाता है ॥ ४९ ॥

अनयैव दिशा स योगवित् प्रकृते

राश्रयणात् पृथक् कृतः। परमेश्वर-
दर्शनक्रियाकथनात् किन्तु समा-
दृतो ऽप्यभूत् ॥ ५० ॥

अन्वयः—सः योगवित् अनया एव दिशा। प्रकृतेः आश्रयणात् पृथक् कृतः। किन्तु परमेश्वरदर्शनक्रियाकथनात् समादृतः अपि अभूत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—वह योग के जानने वाले (पतञ्जलि ऋषि) इसी प्रकार से। प्रकृति के आश्रयण से अलग किये गये थे। परन्तु परमेश्वर के दर्शन की उपाय के कहने से आदर के योग्य भी हुए थे ॥ ५० ॥

भावार्थ—योग शास्त्र के आचार्य पतञ्जलि ऋषि का भी सिद्धान्त है कि प्रकृति आपही से सब करती है इस से वह मानने के योग्य नहीं है। परन्तु परमेश्वर के दर्शन की परम उपाय समाधि के निरूपण करने से वह आदर के भी योग्य है ॥ ५० ॥

इति सूक्ष्मनिरीक्षणे कृते नहि कस्यापि जगन्निरूपणा। मनसो हरणक्षमाभवेदपि यत्नो बहुधा विधीयताम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—इति सूक्ष्मनिरीक्षणे कृते। कस्य अपि जगन्निरूपणा। मनसः हरणक्षमा हि न भवेत्। बहुधा यत्नः विधीयताम् अपि ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—इस प्रकार से सूक्ष्म विचार करने पर। किसी का भी जगत का निरूपण करना। मन के हरने में समर्थ नहीं है। चाहे कितना भी जतन किया जाय ॥ ५१ ॥

भावार्थ—उक्त प्रकार से सूक्ष्म विचार करने पर शास्त्रकारों का जगत की उत्पत्ति का वर्णन करना मन में अच्छा नहीं मालूम पड़ता चाहे कितना भी जतन कीजिये ॥ ५१ ॥

श्रुतिवाक्य विचारणाय यद् र-

चितं जैमिनिना तु दर्शनम् । वचसः परतावधारणे क्षमते तन्न तु सृष्टिधीजनौ ॥ ५२ ॥

अन्वयः—जैमिनिना तु श्रुतिवाक्यविचारणाय। यद् दर्शनम् रचितम् । तद् वचसः परतावधारणे क्षमते । सृष्टिधीजनौ तु न (क्षमते) ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—जैमिनि (भगवान) ने तो वेद-वाक्यों के विचार के लिये। जो शास्त्र रचा है। वह वाक्यों के अर्थ के निश्चय करने में समर्थ है। सृष्टि विषयक बुद्धि के उत्पन्न करने में तो (समर्थ) नहीं है ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जैमिनि भगवान ने वेदवाक्यों के विचार करने के लिये जो मीमांसा नाम शास्त्र को बनाया है। वह शास्त्र तो केवल श्रुतियों के अर्थ का निश्चय करा देता है। और स्वतन्त्र होकर सृष्टि के विषय को नहीं वर्णन करता है। इस कारण उस शास्त्र से सृष्टि इस प्रकार से हुई यह बुद्धि उत्पन्न नहीं होती ॥५२॥

**अवदच्च यदेष न क्रियाव्यति-
रिक्तार्थकता श्रुतेरिति । फलवत्
प्रतिपादनादितः श्रुति मूर्द्धज्ञवरै
रखण्डि तत् ॥ ५३ ॥**

अन्वयः—एषः इतः फलवत्प्रतिपा-
दनात् (हेतोः) । श्रुतेः क्रियाव्यति-
रिक्तार्थकता न इति यद् अवदत् । तत्
श्रुतिमूर्द्धज्ञवरैः अखण्डि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—इस (जैमिनि जी) ने (वेद में)
सफल बातों का ही वर्णन है इस कारण । वेद
का कर्म करना (इस से) भिन्न अर्थ नहीं है यह
जो कहा है । इसे श्रुति के उत्तम भाग (उप-
निषद) के ज्ञाता आचार्यों ने खण्डन किया है ॥

भावार्थ—जैमिनि भगवान ने "आम्नायस्य क्रिया-
र्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्" । इस सूत्र में लिखा
है कि कर्म को छोड़ और कहीं भी वेद का अभि-
प्राय नहीं है । इस बात को उपनिषद के तत्त्व जा-

नने वाले आचार्यों ने भली भांति खण्डन किया है ॥ खण्डन करने वालों का यह अभिप्राय है कि ब्रह्म के प्रतिपादक वाक्यों का कर्म में तात्पर्य किसी प्रकार से नहीं हो सकता क्योंकि ब्रह्मज्ञान का जो कुछ फल न होता तो उन वाक्यों के अर्थ को खींच कर कर्म की ओर लगाते। जब कि ब्रह्मज्ञान के सदृश उत्तम फल का देने वाला कोई भी नहीं है कारण कि इस से अनादि काल के एकट्ठा किये हुए कर्म क्लेश सब नष्ट हो जाते हैं और स्वरूपानन्द प्राप्त हो जाता है तब ब्रह्मज्ञान के उपजाने वाले उपनिषद वाक्यों का अर्थ बड़ी खींच से कर्म की ओर लगाना क्योंकर माना जा सकता है। अर्थात् नहीं माना जा सकता ॥ ५३ ॥

इति वेदवचांस्यनेकधा कथयन्त्यत्र सदेकवस्तुताम्। परदृष्टिवदेव कल्पिता स्वपरास्मिन्निह भेदभावना ॥ ५४ ॥

अन्वयः—इति अत्र (उक्तेसति) वेदवचांसि सदेकवस्तुताम्। अनेकधा कथ-

यन्ति । इह स्वपरस्मिन् भेदभावना।
पशुदृष्टिवत् एव कल्पिता ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—इस प्रकार उपनिषदों का तात्पर्य कर्म की ओर नहीं हो सकता इस के कहे जाने पर (जाना जाता है कि) वेद वाक्य सच्चिदानन्द वस्तु की एकता को अनेक प्रकार से कहते हैं । इस संसार में अपना और पराया यह जो भेद बुद्धि है सो । पशु दृष्टि के समान कल्पित है ॥ ५४ ॥

भावार्थ—इस प्रकार उपनिषद् वाक्यों का तात्पर्य जब कर्म में नहीं हो सकता तब उन वाक्यों से यही सिद्ध हुआ कि सत्चित् आनन्द रूप वस्तु एक है इस संसार में भेद दृष्टि पशु दृष्टि के समान अज्ञान से कल्पना की गई है ॥ ५४ ॥

इति युक्तिबलेन सिध्यति जगतः
स्वप्नसदृक्षता विदाम् । रजतादि
हि दोषयोगतः किमु नालीकमवेक्षितं बहु ॥ ५५ ॥

अन्वयः—विदाम् इति युक्तिबलेन। जगतः स्वप्नसदृक्षता सिध्यति। हि दोषयोगतः रजतादि अलीकम्। किमु बहु न अवेक्षितम्?। (किन्तु अवेक्षितम् एव) ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ—पण्डितों को इस युक्ति के वल से। जगत का स्वप्न के समान होना सिद्ध होता है। क्योंकि भ्रम के कारण रजत आदि मिथ्या पदार्थ। क्या वहुत नहीं देखे गए हैं? (किन्तु देखे ही गए हैं) ॥ ५५ ॥

भावार्थ—उक्त युक्तियों के वल से जगत का स्वप्न के समान होना पण्डितों के चित्त में सिद्ध होता है देखो जैसे स्वप्न देखते समय जो देख पड़ता है वह निद्रा खुलने पर मिथ्या भासित होता है। इसी प्रकार उक्त विचार से ज्ञान होने पर संसार स्वप्न सदृश मिथ्या जान पड़ता है॥ वहुत वार देखने में भी आया है कि नेत्र दोप से वा भ्रम से शुक्ति और रसरी में चांदी और सर्प की भ्रान्ति होती है। जव तक भ्रान्ति निवृत्ति नहीं होती तव तक वह सत्य भासित होता है। इसी प्रकार अज्ञान जव तक

निवृत्त नहीं होता तब तक जगत् सत्य मालूम पड़ता है विचार पूर्वक ज्ञान होने पर जगत् असत् निश्चित होता है ॥ ५५ ॥

सकलं जगदस्ति कल्पितं चिदधिष्ठानमवाप्य शाश्वतम् । चिदबोधत एव केवलं चित आप्तौ तु न किञ्चनाप्यदः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—केवलम् चिदबोधतः एव । शाश्वतम् चित् अधिष्ठानम् अवाप्य । सकलम् जगत् कल्पितम् अस्ति । चितः आप्तौ तु अदः किञ्चन अपि न ॥५६॥

शब्दार्थ—केवल चित् (ब्रह्मतत्त्व) के न जानने ही से । नित्य ब्रह्मरूप आधार को पाकर । सब जगत् कल्पना किया गया है । ब्रह्मज्ञान के प्राप्त होने पर तो यह कुछ भी नहीं है ॥

भावार्थ—केवल ब्रह्मतत्त्व के अज्ञान ही से ब्रह्मरूप अधिष्ठान में सब जगत् कलपना किया गया है

पर ब्रह्मज्ञान के होने पर यह जगत् कुछ भी नहीं रह जाता जैसे रसरी में मिथ्या, सर्प का भ्रम रसरी के ज्ञान होने पर कुछ भी नहीं रहता अर्थात् असत् मालूम होता है ॥ ५६ ॥

प्रथमभ्रमजात्र संस्कृति श्चरम-भ्रान्तिसहायतामिता । प्रथमेऽपि ततोऽपि पूर्वजात्व ऽतिसध्र्यक्त्व-मुपागता तथा ॥ ५७ ॥

अन्वयः—अत्र प्रथमभ्रमजा संस्कृतिः । चरमभ्रान्तिसहायताम् इता । तथा प्रथमे अपि ततः अपि पूर्वजा । अति सध्र्यक्त्वम् उपागता ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ—यहां पहिले भ्रम से उत्पन्न हुआ भ्रम संस्कार। अन्त के भ्रम का सहायक होता है । इसी प्रकार पहिले भ्रम में भी उस से भी पहिले उत्पन्न भ्रम संस्कार । अत्यन्त सहाय हो गया है ॥ ५७ ॥

भावार्थ—यहां कदाचित् यह शंका हो कि भ्रम तो पहिले कहीं अन्यत्र देखे हुए पदार्थों का होता है और जगत् कल्पना, स्थान को छोड़ और कहीं अन्यत्र देखी नहीं जाती । इस से यह जगत्, भ्रम रूप कैसे हो सकता है । इस शंका का उत्तर यह है कि पूर्व कल्प के भ्रम से दूसरे कल्प वाला भ्रम उत्पन्न होता है । और उस से भी पूर्व कल्प के भ्रम से उस कल्प का भ्रम उत्पन्न होता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर भ्रम पूर्व पूर्व भ्रम से उत्पन्न होते चले आते हैं ॥ ५७ ॥

समयस्य न कोऽपि विद्यते प्रथमो वा ऽप्यथ वा ऽन्तिमो ऽवधिः । क भवो ऽस्ति पुरावलोकितः सुसमाधानमिदं ततो भवेत् ॥ ५८ ॥

अन्वयः—समयस्य कः अपि प्रथमः वा । अथवा अन्तिमः अपि अवधिः न विद्यते । ततः पुरा अवलोकितः भवः क अस्ति ? । इदम् सुसमाधानम् भवेत् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ—समय की कोई भी पहिली (अवधि)। अथवा अन्त की भी कोई अवधि नहीं है। इस कारण से पहिले देखा गया संसार कहां है?। (अर्थात् कहीं नहीं है)। यही अच्छे प्रकार का समाधान हो सकता है ॥ ५८ ॥

भावार्थ—जो यह शंका होवे कि सब से पहिले भ्रम की उत्पत्ति कैसे होगी अर्थात् जो प्रथम भ्रम है उस के पूर्व तो भ्रम हो नहीं सकता नहीं तो उस को प्रथम नहीं कह सकते तो अब कहिये पहिले विना कहीं देखे गये का भ्रम कैसे उत्पन्न हुआ ? इस शंका का समाधान यह है कि समय के आदि और अन्त की कोई अवधि नहीं है इसी कारण से पहिले देखा गया संसार कोई हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं पहिला कहा जा सकता। अनादि काल से ऐसे चला आया है और चला जायगा यही अच्छे प्रकार का समाधान हो सकता है ॥ ५८ ॥

इदमास्तिकमात्रभाषिते शरणं नेतरदस्ति दृश्यताम् जगतो ऽस्ति विचित्रता पुराकृतकर्मभ्य इतीरयन्त्यमी ॥ ५९ ॥

अन्वयः—आस्तिकमात्रभाषिते इदम् शरणम् अस्ति । इतरद् न । दृश्यताम् अमी । जगतः विचित्रता पुराकृतकर्मभ्यः अस्ति इति ईरयन्ति ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ—सब आस्तिकों के कथन में यही शरण है । दूसरी (शरण) नहीं है । देखो ये सब आस्तिक लोग । जगत की विचित्रता पूर्व में किये गये कर्मों के अनुसार होती है यह कहते हैं ॥ ५९ ॥

भावार्थ—जितने आस्तिक हैं। उन के सब के कथन में उक्त वही समाधान ठीक हो सकता है क्योंकि सब आस्तिक लोग जगत् में पशु पक्षी आदि के वा देव मनुष्य आदि के शरीर की प्राप्ति अथवा सुखी दुखी, धनी दरिद्र, वा जन्म ही से रोगी वा हृष्ट पुष्ट होना इत्यादि संसार की विचित्रता का कारण पूर्वजन्म के शुभ अशुभ कर्म को कहते हैं । इस में भी वही शंका होती है कि इस जन्म के सुख दुःख का तो इस के पूर्व जन्म का सुख दुःख कारण है ॥ और पूर्व जन्म में जो सुख दुःख भये थे उन का कौन कारण है । अथवा सब से प्रथम जन्म के सुख दुःख के लिये

कौन सा पूर्व जन्म हो सकता है। जिस में किया हुआ पाप पुण्य कारण होगा इस के उत्तर के लिये भी उक्त श्लोक वाला ही उत्तर शरण है अर्थात् समय की कोई भी अवधि नहीं है यह अनादि चक्र चला आता है इस में किसी को पहिला नहीं कह सकते। इसे विचार दृष्टि से देखिये ॥ ५९ ॥

परिहृत्य हृदो ऽतिचापलं चिरकालं सुविभावने कृते। विमलाशययुक् विभावयेन् मृगतृष्णावदिमां भवार्थनाम् ॥ ६० ॥

अन्वयः—हृदः अतिचापलम् परिहृत्य। चिरकालम् सुविभावने कृते। विमलाशययुक् इमाम् भवार्थनाम्। मृगतृष्णावत् विभावयेत् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—चित्त की चञ्चलता को छोड़ कर। बहुत काल तक विचार करने पर। विमल बुद्धि वाला (पुरुष) इस सांसारिक इच्छा को। मृगतृष्णा के तुल्य देखे ॥ ६० ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग हृदय की चञ्चलता को छोड़ बहुत दिनों तक विचार करें तो निर्मल चित्त से देख सकेंगे कि संसार के पदार्थों की इच्छा मृगतृष्णा के समान है। अर्थात् जैसे मृगतृष्णा का विषय मिथ्या होता है इसी प्रकार संसार के पदार्थों की इच्छा भी असत्य विषयिणी इच्छा है ॥ ६० ॥

परमेश्वरशक्तितो ऽपि वा कथ-
मप्येतदवस्तु वस्तु वा । प्रति-
भाति तथापि नोचिता विदुषा-
मत्र नितान्त लीनता ॥ ६१ ॥

अन्वयः—अपि वा एतद् अवस्तु वा वस्तु । परमेश्वरशक्तितः कथम् अपि प्रतिभाति । तथापि अत्र विदुषाम् नितान्तलीनता न उचिता ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—अथवा यह जगत् चाहे झूठ वा सत्य हो। परमेश्वर की शक्ति से किसी प्रकार का भासित होता है। तौभी इस जगत् में विद्वान् को अत्यन्त लीन होना उचित नहीं है ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो यह मान लिया जाय कि जगत् सत्य है वा मिथ्या है इसे कोई निश्चय नहीं कर सकता। यह केवल ईश्वर की शक्ति से किसी प्रकार का भासित होता है। तौभी बुद्धिमानों को चाहिये कि इस संसार में अत्यन्त लीन न होवें ॥ ६१ ॥

अनिशं बहुयत्नसाधनैः परितः पान्ति कलेवरं जनाः। तदपि स्ववशे न तिष्ठति किमिवान्यत् स्वमनोऽनुवर्त्तताम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—जनाः बहुयत्नसाधनैः। कलेवरम् अनिशम् परितः पान्ति। तत् अपि स्ववशे न तिष्ठति। अन्यत् किम् इव स्वमनः अनुवर्त्तताम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—मनुष्य लोग बहुत से जतन और सामग्रियों से। शरीर की रात दिन सब ओर से रक्षा करते हैं। वह भी अपने वश में नहीं रहता

है। और कौन सी वस्तु है जो अपने मन के अनुसार रहेगी ॥ ६२ ॥

भावार्थ—क्योंकि मनुष्य लोग बहुत से जतन और उपायों से अपने शरीर की सदा सब प्रकार से रक्षा करते रहते हैं। वह शरीर भी अपने वश में नहीं रहता तो दूसरी कौन सी वस्तु है जो अपने चित्त के अनुसार रहेगी ॥ ६२ ॥

परिपश्यत एव शैशवं युवताप्यस्तमुपैति देहिनाम्। सततोन्मिषितै र्मनोरथै र्नतु जानन्ति जरां समागताम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—देहिनाम् शैशवम् युवता अपि। परिपश्यतः एव अस्तम् उपैति। सततोन्मिषितैः मनोरथैः (युक्ताः ते)। समागताम् जराम् तु न जानन्ति ॥६३॥

शब्दार्थ—प्राणियों की लड़काई और जवानी भी। देखते ही देखते बीत जाती है। नित्य

उदय हुए मनोरथों से (युक्त वे लोग)। आई हुई बुढ़ाई को नहीं जानते ॥ ६३ ॥

भावार्थ—मनुष्यों की लड़काईं और जवानी तो देखते २ ही अर्थात् अतिशीघ्र चली जाती है। तब भी नित्य नए २ मनोरथों को करते रहते हैं और आई हुई बुढ़ाई की ओर ध्यान नहीं देते अर्थात् पहिली दोनों अवस्था को संसारी कामों में बिता कर बुढाई में भी ईश्वर की ओर चित्त नहीं लगाते॥

निखिला अपि ते मनोरथा हृदि कोलाहलमेव कुर्वते। विषयैस्तु निजैः समागमं न लभन्ते ऽब्द-शते ऽप्यहो गते ॥ ६४ ॥

अन्वयः—ते निखिलाः मनोरथाः अपि। हृदि एव कोलाहलम् कुर्वते। अहो अब्दशते गते अपि। निजैः विषयैः समागमम् न लभन्ते ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—वे सब मनोरथ भी। हृदय में ही

कोलाहल किया करते हैं। आश्चर्य है कि सौ वर्ष वीतने तक भी। अपने विषय को नहीं पाते ॥ ६४ ॥

भावार्थ—वे सब मनोरथ मनके मनही में रहजाते हैं सौ वर्ष वीतने पर भी अर्थात् इस आयु भर में भी वे मनोरथ पूरे नहीं होते ॥ अथवा पिता के मनोरथ के पूरा करने के लिये पुत्र पौत्र तक भी यत्न करते जाते हैं पर नहीं पाते ॥ ६४ ॥

नयनोरुपयोधराव्हयानऽपि चर्मावृतमांसपिण्डकान्। अवलोक्य विमोहिताशया जहतीहा ऽखिलभद्रमात्मनः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—नयनोरुपयोधराह्वयान् चर्मावृतमांसपिण्डकान् अपि अवलोक्य। विमोहिताशयाः इह आत्मनः अखिलभद्रम् जहति ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—आंख जांघ स्तन नाम के चमड़े से

मिढ़े मांस के पिंण्ड को भी देखकर। मोहित हुए मनुष्य लोग इस संसार में अपने सब कल्याण को त्याग कर देते हैं ॥ ६५ ॥

भावार्थ—मनुष्य लोग सुन्दर आंख जांघ स्तन वाली स्त्रियों को देख कर मोह जाते हैं अपने को भूल कर इस संसार में अपनी भलाई को अर्थात् अपने सब कर्त्तव्यों का त्याग कर देते हैं ॥ ६५ ॥

लब्ध्वा ऽपि दैवाद् विषयोपभोगं चिरान्मनःकोटरसम्प्रविष्टम्। तृष्णापिशाचीपरिभूतचित्ताः सन्तोपमन्ते ऽपि न विभ्रते ऽमी ॥

अन्वयः—चिरात् मनःकोटरसम्प्रविष्टम्। विषयोपभोगम् दैवात् लब्ध्वा अपि। तृष्णापिशाचीपरिभूतचित्ताः अमी। अन्ते अपि सन्तोषम् न विभ्रते ॥६६॥

शब्दर्थ—बहुत काल से मन के भीतर प्रविष्ट। विषय के भोगों को दैव संयोग से पाकर भी

कोलाहल किया करते हैं। आश्चर्य है कि सौ वर्ष वीतने तक भी। अपने विषय को नहीं पाते ॥ ६४ ॥

भावार्थ—वे सब मनोरथ मनके मनही में रहजाते हैं सौ वर्ष वीतने पर भी अर्थात् इस आयु भर में भी वे मनोरथ पूरे नहीं होते ॥ अथवा पिता के मनोरथ को पूरा करने के लिये पुत्र पौत्र तक भी यत्न करते जाते हैं पर नहीं पाते ॥ ६४ ॥

नयनोरुपयोधराव्हयानऽपि चर्मावृतमांसपिण्डकान्।अवलोक्य विमोहिताशया जहतीहा ऽखिलभद्रमात्मनः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—नयनोरुपयोधराह्वयान् चर्मावृतमांसपिण्डकान् अपि अवलोक्य। विमोहिताशयाः इह आत्मनः अखिलभद्रम् जहति ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—आंख जांघ स्तन नाम के चमड़े से

अच्छा कह गए हैं। मनोरथ अपनी चाही हुई वस्तु के मिलने से कधी भी शान्ति को नहीं पहुंचता। वरन घी को पाकर प्रकाशमान। अग्नि के समान वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥

भावार्थ—इस विषय में राजा ययाति ने अच्छा कहा है कि विषयों के भोग से इच्छा कधी भी शान्त नहीं होती वरन जैसे आग घी आदि के पाने से अत्यन्त बढ़ती है वैसे इच्छा दिन२ बढ़ती जाती है ॥ ६७ ॥

जरासमुद्यत्कफघुर्घुरस्वरा दारिद्र्यदावानलदग्धवाञ्छिताः। विमर्दिताश्चापि नृपारितस्करैः स्मरन्ति नारीकिलकिञ्चितान्यहो ॥

अन्वयः-जरासंसुद्यत्कफघुर्घुरस्वराः। दारिद्र्यदावानलदग्धवाञ्छिताः। नृपारितस्करैः विमर्दिताः अपि। नारी किलकिञ्चितानि स्मरन्ति अहो ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ—बुढ़ाई के कारण उत्पन्न हुए कफ से

तृष्णा रूपी पिशाची से विनाशित चित्त ये मनुष्य लोग। अन्त में भी सन्तोष को नहीं धारण करते ॥ ६६ ॥

भावार्थ—चिर काल से मन के भीतर विद्यमान विषय भोग के दैव संयोग से मिलजाने पर भी तृष्णा रूपी चुड़ैल मन में घुसी है इस कारण से ये मनुष्य लोग अन्तकाल के समीप आने पर भी अर्थात् अतिवृद्ध होने पर भी सन्तोष को धारण नहीं करते ॥

गीतं पुरा साधु ययातिना ऽत्र न जातु कामो विषयानुषङ्गात् ।
शमं व्रजेत् प्रत्युत याति वृद्धिं हविः प्रपद्येव हविर्भुगिद्धः ॥६७॥

अन्वयः—अत्र ययातिना पुरा साधु गीतम्। कामः विषयानुषङ्गात् जातु शमम् न व्रजेत्। प्रत्युत हविः प्रपद्य इद्धः। हविर्भुक् इव वृद्धिं याति ॥ ६७॥

शब्दार्थ—इस विषय में राजा ययाति पहिले

यद् वा विधातुः सकला अपि सृष्टिः।
एकस्य पुंसः वितृप्तये न स्युः॥ ६९॥

शब्दार्थ—समुद्र पर्यन्त पृथ्वी मण्डल का राज्य। तीनों लोकों की सुन्दर स्त्रियां। अथवा ब्रह्मा जी की सब सृष्टि भी। एक पुरुष की विशेष तृप्ति के लिये नहीं हो सकती॥ ६९॥

भावार्थ—समुद्र पर्यन्त पृथिवी का राज्य, तीनों लोकों की सब कामिनी अथवा ब्रह्मा जी की सृष्टि के भीतर के सब भोग्य पदार्थ एक पुरुष के भी मन के विशेष सन्तोष के लिये नहीं हो सकते॥ इस से धन धान्य स्त्री हाथी घोड़ा आदि भोग पदार्थों का संग्रह करके सन्तुष्ट होंगे यह आशा करना बड़ी भूल है॥६९॥

अनन्तकोटी र्जनुषां सहस्रक्लेशावलीव्याकुलिता व्यतीत्य। कथञ्चिदासाद्य मनुष्यजन्म श्रमात् पुनः संसृतिमर्जयन्ति॥७०॥

अन्वयः-सहस्रक्लेशावलीव्याकुलिताः।

घुर्घुर शब्द करने वाले। दरिद्रता रूपी दावाग्नि से दग्ध मनोरथ। और राजा से शत्रु से चोरों से पीडित मनुष्य भी। स्त्रियों के विलास को स्मरण करते हैं यह कैसा आश्चर्य है॥ ६८ ॥

भावार्थ—बुढ़ाई से जिन के कण्ठ में कफ घुर घुर शब्द करता है दरिद्रता के कारण मन भी मरासा रहता है। राजा के शत्रु के और चोरां के उपद्रव से पीड़ित भी हैं अर्थात् अति वृद्ध अति दरिद्र और अति पीड़ित भी हैं तौ भी लोग स्त्रियों के हाव भाव को स्मरण करते हैं और अन्त को नहीं विचारते यह कैसा आश्चर्य है ॥ ६८ ॥

आसिन्धु भूमीवलयाधिपत्यम् लोकत्रयोल्लासिनतभ्रुवो वा। यद् वा विधातुः सकलापि सृष्टि र्नैकस्य पुंसो ऽपि वितृप्तये स्युः॥

अन्वयः—आसिन्धु भूमीवलयाधिपत्यम्। लोकत्रयोल्लासिनतभ्रुवः वा।

अन्वयः—कालफणी प्रकोपम् कुर्वन् । दिने दिने सन्निधानम् समागच्छति । निपीतमोहासवजातमादः । कः अपि भीतिम् न आयाति ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—काल रूपी सर्प क्रोध करता हुआ । दिन दिन पास चला आता है । मोहमयी मदिरा को पीकर मत्त (हो रहे हैं इस से) । कोई भी भय को नहीं प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥

भावार्थ—"क्रुद्ध काले सर्प के समान भयंकर काल नित्य नित्य पास चला आता है"। इतना समझते हैं तो भी अज्ञान रूपी मदरा के नशे में सब मत्त हो रहे हैं इस कारण कोई भी हम मरेंगे यह भय नहीं करता ॥ ७१ ॥

प्रतिभातं पशुवित्तपुत्रकलत्रचिन्ताव्यथितान्तरालाः। आस्वापकालं परितो भ्रमन्तो मोघं वयः संक्षपयन्त्यशेषम् ॥ ७२ ॥

जनुषाम् अनन्तकोटीः व्यतीत्य। कथ-
ञ्चित् मनुष्यजन्म आसाद्य। श्रमात् पुनः
संसृतिम् अर्जयन्ति ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—हजारों क्लेशों के समुदाय से व्याप्त। जन्म की असङ्ख्य कोटि को विताय कर। किसी प्रकार मनुष्य के देह को पाकर। वड़े जतन से फिर भी संसारही का उपार्जन किया चाहते हैं॥

भावार्थ—हजारों क्लेशों के झुण्ड से युक्त अनन्त करोड़ों जन्म को भोग कर कोई वड़ा पुन्य वन पड़ा होगा इस कारण मनुष्य जन्म पाया। इस में संसार से अपना उद्धार होवे ऐसा उपाय करना चाहिये उस उपाय की ओर तो ध्यान ही नहीं देते और वड़े परिश्रम से फिर आवागमन अर्थात् जन्म मरण ही का उपार्जन करते हैं और मोक्ष की उपाय नहीं सोचते ॥७०॥

दिने दिने कालफणी प्रकोपं कु-
र्वन् समागच्छति सन्निधानम् ।
निपीतमोहासवजातमादो न भी-
तिमायाति कदापि कोऽपि॥७१॥

सरावबोधः। प्रायः सुदुःशकः। कथञ्चित् तम् आप्याऽपि। ईश्वरम् न स्मरन्ति। किन्तु स्मरकाङ्क्षितानि (स्मरन्ति) ॥७३॥

शब्दार्थ—अज्ञान से आवृत चित्त मनुष्य को मरण समय का ज्ञान। प्रायः नहीं हो सकता। किसी प्रकार उस (ज्ञान) को पाया भी तो। उस ईश्वर का स्मरण नहीं करते। किन्तु काम अवस्था में जिन विषयों की चिन्ता होती है उन को स्मरण करते हैं ॥ ७३ ॥

भावार्थ—आज कल प्रायः सब का चित्त अज्ञान से आवृत है इस से अब हम मरेंगे यह ज्ञान किसी को नहीं होता। जो राजयक्ष्मा (तपेदिक) आदि असाध्य रोगों के कारण या अतिवृद्धावस्था के कारण मरने का समय समीप है यह ज्ञान हुआ तो भी लोग उस समय ईश्वर का स्मरण नहीं करते वरन उन्हीं बातों का स्मरण करते हैं जिन की इच्छा कामदेव के समय में होती है ॥ ७३ ॥

तस्माद् वृथा भवतु मा द्विजदे-हलाभोद्योगः कृतो ऽन्यजनुषीति

अन्वयः—प्रतिप्रभातम् पशुवित्तपुत्रकलत्रचिन्ताव्यथितान्तरालाः। आस्वापकालम् परितः भ्रमन्तः। मोघम् अशेषम् वयः संक्षपयन्ति ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—प्रति दिन सवेरे से पशु, धन, सन्तान और स्त्री की चिन्ता में जिनका मन दुखी हो रहा है। (वे भी) शयन काल तक चारों ओर भ्रमण करते २। व्यर्थ सब आयु को खो देते हैं॥

भावार्थ—देखो प्रायः सब मनुष्य सवेरे से स्त्री पुत्र धन पशु इन की चिन्ता में मग्न हो शयन समय तक इधर उधर घूमते २ चिन्ता में ही व्यर्थ अपनी सब आयु को खो देते हैं ॥ ७२ ॥

प्रायः प्रयाणावसरावबोधः सुदुःशकः संवृतचेतनानाम्। कथञ्चिदाप्यापि तमीश्वरं न स्मरन्ति किन्तु स्मरकाङ्क्षितानि ॥७३॥

अन्वयः—संवृतचेतनानाम् प्रयाणाव-

इस लिये घर स्त्री पुत्र धन आदि सब वस्तुओं को एक साथ छोड़ कर दुःखरूपी दावानल की ज्वाला के शान्त करने वाले परमेश्वर के चरण कमलों का हम आश्रयण लेवें यह उक्त स्वामी जी ने निश्चय किया ॥ ७४ ॥

इत्थं विचिन्त्य परमात्मनि षण्णवृत्तिः सङ्कल्पकल्पनमशेषमपोह्य दूरम् । हेलां दधावखिल कर्मविपाकभेदश्रेणीनिबद्धसुतवित्तकलत्रवर्गे ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इत्थम् विचिन्त्य । अशेषम् सङ्कल्पकल्पनम् दूरम् अपोह्य । परमात्मनि षण्णवृत्तिः । अखिलकर्मविपाक भेदश्रेणीनिबद्धसुतवित्तकलत्रवर्गे हेलाम् दधौ ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—ऐसा विचार कर। मन की सब कल्पनाओं को दूर फेंक कर। परमात्मा में अन्तः-

विहाय सर्वम् । गेहादिकं सपदि दुःखदवानलार्चिःशान्तिप्रदेशच-रणाम्बुजमाश्रयेयम् ॥ ७४ ॥

अन्वयः—तस्माद् अन्यजनुषि कृतः । द्विजदेहलाभोद्योगः वृथा मा भवतु । इति सर्वम् गेहादिकम् सपदि विहाय । दुःखदवानलार्चिःशान्तिप्रदेशचरणाम्बु-जम् (अहम्) आश्रयेयम् ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—इस कारण पूर्वजन्म में किया गया। ब्राह्मण देह पाने के लिये जो उद्यम सो वृथा न होवे । इस लिये सब गृह आदि को एकबा-रगी छोड़ कर । दुःखरूपी दावानल की ज्वाला के शान्त करने वाले परमेश्वर के चरण कमलों का (हम) आश्रयण करें ॥ (यह स्वामी जी ने निश्चय किया) ॥ ७४ ॥

भावार्थ—इस कारण दूसरे जन्म में किया गया जो ब्राह्मण शरीर मिलने का उद्यम वह वृथा न होवे

इस लिये घर स्त्री पुत्र धन आदि सब वस्तुओं को एक साथ छोड़ कर दुःखरूपी दावानल की ज्वाला के शान्त करने वाले परमेश्वर के चरण कमलों का हम आश्रयण लेवें यह उक्त स्वामी जी ने निश्चय किया ॥ ७४ ॥

इत्थं विचिन्त्य परमात्मनि ष- ण्णवृत्तिः सङ्कल्पकल्पनमशेष- मपोह्य दूरम् । हेलां दधावखिल कर्मविपाकभेदश्रेणीनिबद्धसुतवि- त्तकलत्रवर्गे ॥ ७५ ॥

अन्वयः—इत्थम् विचिन्त्य । अशेषम् सङ्कल्पकल्पनम् दूरम् अपोह्य । परमात्मनि षण्णवृत्तिः । अखिलकर्मविपाक भेदश्रेणीनिबद्धसुतवित्तकलत्रवर्गे हेलाम् दधौ ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—ऐसा विचार कर। मन की सब क- ल्पनाओं को दूर फेंक कर। परमात्मा में अन्तः-

करण को लगाय। और नाना प्रकार के कर्मों के जो अनेक फल उन के परिणाम रूप जो पुत्र धन स्त्री आदि इन में अनादर बुद्धि किया ॥७५॥

भावार्थ—ऐसा विचार कर मन के सङ्कल्परूप कर्म को त्याग कर परमात्मा में चित्त की वृत्ति को लगाया और नाना प्रकार के कर्मों के फल रूप जो पुत्र धन स्त्री आदि इन में अनादर किया। अर्थात् इनकी ओर से चित्त को हटा लिया ॥ ७५ ॥

विहाय तस्मिन् समये ऽखिलं तद् विनिर्गतः प्रत्यगुपेतचेताः ॥ यदृच्छयैवोज्जयिनीं जगाम पुरीं महाकालमहेश्वरस्य ॥ ७६ ॥

अन्वयः—प्रत्यगुपेतचेताः तस्मिन् समये। अखिलम् तद् विहाय विनिर्गतः। यदृच्छया एव महाकालस्य महेश्वरस्य। पुरीम् उज्जयिनीम् जगाम ॥ ७६ ॥

शब्दार्थ—परमेश्वर में लग्न चित्त (यतीन्द्र जी)

उस समय में । सब उस घर बार को छोड़ कर चल दिये । दैव की इच्छा ही से महाकाल महादेव की । पुरी उज्जयिनी को आये ॥ ७६ ॥

भावार्थ—परब्रह्मानुरागी उक्त महात्मा जी उस समय सब घर स्त्री पुत्र आदि को छोड़ कर अर्थात् विरक्त हो घर से निकल पड़े और दैव की इच्छा से महाकालेश्वर महादेव जी की पुरी उज्जयिनी को गये ॥ ७६ ॥

कञ्चित् कालं हृत्सरोजान्तरस्थं ध्यायन्नीशं शान्तचित्तः स तत्र ।ग्रन्थां स्तां स्तान् योगवीथीप्रकाशान् साध्वभ्यास्यत् प्राप्तबोधौचितीकान् ॥ ७७ ॥

अन्वयः—शान्तचित्तः स तत्र कञ्चित् कालम् । हृत्सरोजान्तरस्थम् ईशम् ध्यायन् । प्राप्तबोधौचितीकान् योग-

वीथीप्रकाशान् । तान् तान् ग्रन्थान् साधु अभ्यास्यत् ॥ ७७ ॥

शब्दार्थ–स्थिर चित्त उस (योगीन्द्र) ने उज्जैन में कुछ काल तक। हृदय कमल के वीच में स्थित ईश्वर का ध्यान करते करते। वोध के प्राप्त कराने वाले और योग मार्गों के प्रकाश करने वाले । उन उन ग्रन्थों का भली भांति अभ्यास किया ॥ ७७ ॥

भावार्थ—शान्तमन योगीन्द्र महाराज ने उज्जैन में कुछ काल तक अपने हृदय कमल के मध्य में ईश्वर का ध्यान करते हुए। जिन ग्रन्थों का पढ़ना जानना उचित था उन योग मार्ग के प्रकाश करने वाले ग्रन्थों का अच्छे प्रकार से अभ्यास किया ॥ ७७ ॥

अनन्तरं द्वारवतीमगच्छद् या गोपवेषस्य हरे र्बभूव । वैकुण्ठगोलोकयुगाधिराजत्स्तम्भोल्लसद् गोपुरराजधानी ॥ ७८ ॥

अन्वयः—अनन्तरम्। या गोपवेषस्य हरेः। वैकुण्ठ गोलोकयुगाधिराजत् स्तम्भोल्लसद्गोपुरराजधानी बभूव (ताम्) द्वारवतीम् अगच्छत् ॥ ७८ ॥

शब्दार्थ—उस के अनन्तर। जो गोप भेषधारी (श्री कृष्णचन्द्र) हरि की। वैकुण्ठ और गोलोक इन दोनो सर्वोत्तम खम्भों से प्रकाशमान है पुरद्वार जिस में ऐसी राजधानी थी। (उस) द्वारिका पुरी को आये ॥ ७८ ॥

भावार्थ—उस के अनन्तर द्वारिकापुरी को गये जो गोप वेष श्रीकृष्णचन्द्र जी की राजधानी थी और जिस में वैकुण्ठ और गोलोक ये दोनों, पुर द्वार के स्तम्भ से मालूम पड़ते थे ॥ ७८ ॥

तीर्थोचितं तत्र विधाय कार्यजातं पुन र्गुर्जरमालवादीन्। देशानटन् तत् तदुपेतपुण्यक्षेत्रं यथाशास्त्रमशिश्रियत् सः ॥ ७९ ॥

अन्वयः—तत्र सः तीर्थोचितम् कार्यजातम् विधाय । पुनः गुर्जरमालवादीन् देशान् अटन् । तद् तद् उपेतपुण्यक्षेत्रम् यथाशास्त्रम् अशिश्रियत् ॥ ७९॥

शब्दार्थ—वहां पर उन्हों ने तीर्थोचित कर्मों को करके । फिर गुजरात मालवा आदि देशों में घूमते घूमते । उन उन (देशों में) प्राप्त पवित्र स्थानों का शास्त्र के अनुसार सेवन किया॥

भावार्थ—द्वारिका जी में महाराज यतीन्द्र जी ने तीर्थोचित देव पितृ पूजन आदि कर्मों को करके फिर गुजरात और मालवा आदि देशों में घूमते २ मार्ग में मिले तीर्थों का शास्त्रविधि के अनुसार सेवन किया ॥ ७९ ॥

वेदान्ताभ्यासमातन्वन् तीर्थयात्रां दधत् तथा । मूर्त्तः समुच्चय इव बभौ स ज्ञानकर्म्मणोः ॥८०॥

अन्वयः—सः वेदान्ताभ्यासम् आ-

तन्वन् तथा तीर्थयात्राम् दधत्। ज्ञान-
कर्मणोः मूर्त्तः समुच्चय इव बभौ ॥८०॥

शब्दार्थ—वह (महात्मा) वेदान्त में अभ्यास को वढ़ाते हुए और तीर्थयात्रा को करते हुए। ज्ञान और कर्म की समुच्चित एक मूर्त्ति के समान शोभित होते थे ॥ ८० ॥

भावार्थ—वह यतीन्द्रजी महाराज वेदान्त के अभ्यास में तत्पर होकर भी तीर्थयात्रा को विधिपूर्वक करते थे इस से ऐसा मालूम पड़ता था मानो ज्ञान और कर्म दोनों मिलकर एक मूर्त्ति हुए हैं ॥ कारण इस का यह है कि मीमांसक कहते हैं कि विधिवत् कर्म करने ही से मुक्ति पर्यन्त मिल सकती है। और वेदान्ती कहते हैं कि यह नहीं है केवल ज्ञान ही से मुक्ति मिलती है कर्म ज्ञान के साधन मात्र हो सकते हैं। इन दोनों के कठिन युक्ति वाले विवादों को न सहकर मानो ज्ञान और कर्म ने आपस में एक हो उक्त स्वामी जी का अवतार धारण किया है ॥८०॥

अथायमागात् पुनरेव पुण्याम्
पुरीं महाकालसमाश्रितां ताम्।

विचारनिर्धूततमोरजस्क स्तुर्या-
श्रमं धारयितुं तदैच्छत् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—अथ अयम् महाकालस-
माश्रिताम् ताम्। पुण्याम् पुरीम् पुनः
एव आगात्। तदा विचारनिर्धूततमो-
रजस्कः (सः)। तुर्याश्रमम् धारयितुम्
ऐच्छत् ॥ ८१ ॥

शब्दार्थ—उपरान्त यतीन्द्र जी महाकाल महा-
देव की उस। पुण्य पुरी को फिर भी आए।
तब (वेदान्त) विचार से तमोगुण रजोगुण
रहित यतीन्द्र ने। चौथे आश्रम के धारण करने
की इच्छा की ॥ ८१ ॥

भावार्थ—अनन्तर यतीन्द्र जी महाराज तीर्थों में
घूमते २ महाकालेश्वर महादेव जी की उसी पवित्र
नगरी में फिर आए॥ और तब बहुत काल तक
विचार करने से रजोगुण तमोगुण रहित अर्थात्
शुद्ध सत्त्वमूर्त्ति अति वैराग्यवान् उस महात्मा ने
सन्यास आश्रम धारण करने की इच्छा की ॥८१॥

बभूव पूर्वं नियमव्रताढ्य स्ततो गृहस्थाश्रममप्यधार्षीत्। तीर्थाश्रयाज् जातवनस्थकृत्यो ऽजानात् स कालं ह्यनुरूपमस्य॥८२॥

अन्वयः—पूर्वम् नियमव्रताढ्यः बभूव। ततः गृहस्थाश्रमम् अपि अधार्षीत्। तीर्थाश्रयात् जातवनस्थकृत्यः सः। कालम् अस्य अनुरूपम् अजानात्॥ ८२॥

शब्दार्थ—पहिले वेद के व्रत से युक्त हुए। उपरान्त गृहस्थ आश्रम को भी धारण किया। तीर्थों के सेवन से वानप्रस्थ आश्रम का कार्य पूरा कर उक्त महात्मा ने। (अब शेष) समय को सन्यास के ही योग्य जाना॥ ८२॥

भावार्थ—विचार करने से मालूम होता है कि उक्त महात्मा जी से तीनों आश्रम यथोचित सेवन

किये गए॥ यज्ञोपवीत के अनन्तर वेद वेदाङ्ग पढ़ने के समय ब्रह्मचर्य आश्रम और विवाह समय से गृहस्थाश्रम और तीर्थयात्रा के बहाने से वानप्रस्थ आश्रम यथाविधि सेवन किया गया। इस कारण उक्त महाराज ने शेष समय को सन्यास धर्म के योग्य समझा॥ ८२॥

सप्तविंशतिवर्षमात्रवयस्क एष विदग्रणी रात्मचिन्तनरागयुग् विषयान् नितान्तविरागवान्। धूतवारुणशाक्रवैधनिकेतसौख्य कुवासनः न्यासमेव समाश्रयत् फलमेष एव हि जन्मनः॥ ८३॥

अन्वयः—सप्तविंशतिवर्षमात्रवयस्कः आत्मचिन्तनरागयुक्। विषयात् नितान्तविरागवान्। धूतवारुणशाक्रवैधनिकेतसौख्यकुवासनः विदग्रणीः एषः।

न्यासम् एव समाश्रयत् । हि जन्मनः एषः एव फलम् ॥ ८३ ॥

शब्दार्थ—सत्ताईश वर्ष की अवस्था वाले, आत्म विचार के प्रेमी, । विषय से अत्यन्त वैराग्य करने वाले । और वरुण लोक इन्द्र लोक और ब्रह्म लोक के सुख की बुरी वासना जिन को नहीं है ऐसे विद्वानों के मुखिया इस महात्मा ने । संन्यास ही को धारण किया । क्योंकि जन्म का यही फल है ॥ ८३ ॥

भावार्थ—सत्ताईश वर्ष की अवस्था में आत्म विचारही में प्रीति थी इसी से इन्द्रियों के विषयों से, अत्यन्त वैराग्य था और इन्द्र लोक वरुण लोक और ब्रह्म लोक के सुख की इच्छा रूपी बुरी वासना जिन को नहीं थी ऐसे उस महात्मा श्रेष्ठ विद्वान ने संन्यास को धारण किया । क्योंकि उत्तम मनुष्य जन्म का यही फल है ॥ ८३ ॥

नवयौवनं बलवद् वपुः कमनी-
यरुग् गुणिगण्यता तरुणी रति-

प्रतिमा सुतः शशिनः सदृक् कि-
मियं कृतिः । इति तस्य कोऽपि
निवारणक्षमतामितो न वपुर्द्धर
स्तमसो हि विद्धि बलं कियद्
रवितेजसः पुरतो भवेत् ॥ ८४ ॥

अन्वयः—नवयौवनम्, बलवद् वपुः, कमनीयरुक् गुणिगण्यता । रतिप्रतिमा तरुणी, शशिनः सदृक् सुतः (एतेषु सत्सु) । इयम् कृतिः किम् इति कः अपि वपुर्द्धरः । तस्य निवारणक्षमताम् न इतः । हि रवितेजसः पुरतः तमसः बलम् कियद् भवेत् इति विद्धि ॥ ८४ ॥

शब्दार्थ—नई जवानी, बलवान् शरीर, सुन्दर कान्ति, गुणियों में गिने जाना, । रति के समान स्त्री, और चन्द्रमा के समान पुत्र (इन के रहते)। यह काम क्यों (करते हो) इस प्रकार

कोई भी देहधारी। उन के रोकने में समर्थ न हुआ। क्योंकि सूर्य के तेज के आगे अन्धेरा का वल कितना हो सकता है इसे विचार लो ॥ ८४ ॥

भावार्थ—फिर उस काल में कोई मनुष्य इस वात के कहने में भी समर्थ न हुआ कि "ऐसी नवीन अवस्था, वलवान् शरीर, सुन्दर कान्ति, गुणियों में मुख्य गिने जाना, रति के समान सुन्दर स्त्री, और चन्द्रमा के समान सुन्दर पुत्र इन सव के रहते भी आप यह क्या करते हैं" ॥ क्योंकि अन्धकार का वल ही कितना है जो सूर्यनारायण के सामने हो सके अर्थात् यह सव कहना तमोगुणियों के लिये है सत्त्व-गुण के प्रकाश के सामने इन तमोगुणियों का कुछ चल नहीं सकता ॥ ८४ ॥

रविमण्डलं निजभेदभीचलनं वि-भर्ति तदा स्म नो हविरस्तमे-त्य शचीपतिश्च न शोचति स्म परागृदृशा । अभयप्रदानविला-सिना जगदीशताम् गमितात्मना

ऽप्यमुना भयं कथमुद्भवेन् न हि पुण्यमस्ति ततः परम् ॥ ८५ ॥

अन्वयः—तदा रविमण्डलम् निजभेदभीचलनम् नो बिभर्ति स्म। शचीपतिश्च हविः अस्तम् एत्य न शोचति स्म। अभयप्रदानविलासिना परागदृशा जगदीशताम् गमितात्मना अपि अमुना भयम् कथम् उद् भवेत्। हि ततः परम् पुण्यम् न अस्ति ॥ ८५ ॥

शब्दार्थ—तब सूर्य मण्डल ने अपने विध जाने की भय से कांपने को नहीं धारण किया। और इन्द्राणी के पति ने भी आहुति नष्ट होती है यह समझ अपसोस न किया। अभयदान के देने वाले और बहुत समय से ईश्वर का ध्यान करते करते जगत् के स्वामित्त्व को उनका आत्मा पहुंच गया था ऐसे से डर क्यों हो सकती है। क्योंकि इस से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है॥८५॥

भावार्थ—संन्यास धर्म के ग्रहण करते ब्राह्मण के देख सूर्य मण्डल कांपने लगता है कि यह अन्त में हम के वेध करके चला जायगा । और इन्द्र देवता के भी चिन्ता होती है कि हमारी आहुति के देने वाले कम हुए जाते हैं परन्तु यतीन्द्र जी महाराज के संन्यास लेने के समय न सूर्य मण्डल अपने भेद की डर से कांपा न आहुति के कमी की इन्द्र के चिन्ता हुई क्योंकि उक्त महाराज अभयदान के देने वाले थे और बहुत काल से ईश्वर का ध्यान करते करते जगत् के रक्षक परमात्मा के स्वरूप हो गये थे उन से किसी के क्यों भय होगा कारण यह है कि कोई २ पुण्य शुक्ल कृष्ण दोनो रूप वाला होता है उस से किसी २ जीव के क्लेश भी प्राप्त होता है जैसे अश्वमेध आदि यज्ञ है । और जो पुण्य शुद्ध सत्त्व रूप है जैसे सर्वभूत का अभयदान निष्काम परमेश्वर का ध्यान आदि इन पुण्यों से किसी के भय नहीं होता है। इस का यह आशय है कि वही संन्यासी सूर्य मण्डल का भेद करके जाते हैं जिनके आत्मा में परिच्छिन्नत्व का अध्यास (ख्याल) बना है अर्थात् जिनका आत्मा लिंग शरीर से युक्त है और सर्व व्यापक नहीं हुआ है केवल निष्काम उपासना से योगाभ्यास से योग्यता मात्र प्राप्त हो गई है। और जिन संन्यासियों के अखण्ड परमेश्वर के

साक्षात्कार हो जाने से अद्वितीय, सर्वव्यापी सच्चिदानन्द रूप अपना आत्मा हो गया है । इन के लिये तो कोठिन सूर्यमण्डल चन्द्रमण्डल और ब्रह्माण्ड अपने आत्म स्वरूप हैं अपने से भिन्न नहीं हैं ये संन्यासी सूर्यमण्डल का भेद क्या करेंगे अर्थात् नहीं करते इस से सूर्यमण्डल न कांपा ॥ और ऐसे परमात्म स्वरूप से इन्द्र को भी अपने आहुति के हानि की चिन्ता न हुई क्योंकि परमात्मा ही की सत्ता से सब होम करने वाले स्थित हैं बिना सत्ता एक क्षण में नष्ट हो जांय और जिनकी सत्ता मात्र से कड़ोरों होम करने वाले उत्पन्न होते हैं उस के एक देह के संन्यास धारण करने से इन्द्र को भी आहुति हानि की चिन्ता नहीं हुई ॥ इस से बढ़ कर और कोई पुण्य भी नहीं है ॥ ८५ ॥

पूर्वाश्रमेणाथ सहैव पूर्वं सन्त्यज्य नाम स्मृतये जनानाम् । नामाद्यगम्योऽपि बभूव नाम्ना श्रीभास्करानन्द सरस्वतीति ॥ ८६ ॥

अन्वयः—अथ पूर्वाश्रमेण एव सह पूर्वम् नाम सन्त्यज्य । नामाद्यगम्यः

अपि जनानाम् स्मृतये। नाम्ना श्री भास्करानन्द सरस्वती इति बभूव ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ—उपरान्त पूर्व आश्रम के साथ ही (पिता से दिये गए) पहिले नाम को त्याग कर। नाम आदि की पहुंच के वाहर थे तौ भी जनों के स्मरण के लिये। नाम से श्री भास्करानन्द सरस्वती हुए ॥ ८६ ॥

भावार्थ—संन्यास आश्रम के धारण करने के समय में पहिले आश्रम के साथ ही प्रथम नाम के भी त्याग कर दिया। यद्यपि उक्त योगीश्वर महाराज तुरीय अवस्था के प्राप्त होने से नाम आदि अर्थात् वाणी और मन की पहुंच के वाहर हो गए थे तौ भी अपने भक्त जन नाम के स्मरण कर कल्याण के पावें इस लिये श्री भास्करानन्द सरस्वती इस नाम के धारण किया॥

यतिरयमस्मिन् वासं सुखेन तनुकालमकृत रेवायाः। परिसरगे सुस्थाने विदितशिवनिजात्मतादात्म्यः ॥ ८७ ॥

अन्वयः—विदितशिवनिजात्मतादात्म्यः अयम् यतिः । रेवायाः परिसरगे अस्मिन् सुस्थाने। सुखेन तनुकालम् वासम् अकृत ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—महादेव जी से अपने आत्मा को अभिन्न जानने वाले यतीन्द्र जी ने। रेवा नदी के पास इस सुन्दर स्थान में । सुख से थोड़े समय तक वास किया ॥ ८७ ॥

भावार्थ—शिव से और अपने आत्मा से भेद नहीं है यह ज्ञान जिन को हो गया है ऐसे इस यतीन्द्र महाराज ने रेवा नदी के पास उज्जैन नगरी में सुख से थोड़े दिनों तक वास किया ॥ ८७ ॥

निरवधिमहिम स्थानं यत् काशीति श्रुतौ गीतम् । तत्राथागात् विद्वान् स यतिः स्मरणीय सच्चरितः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—अथ स्मरणीय सच्चरितः

विद्वान् स यतिः। श्रुतौ निरवधिमहिम गीतम् । यत् काशी इति स्थानम् तत्र अगात् ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—उपरान्त स्मरण करने योग्य उत्तम चरित्र वाले विद्वान् वह यतीन्द्र जी । वेद में अनन्त महिमा कही गई है जिस की। उस काशी इस स्थान में आये ॥ ८८ ॥

भावार्थ—उपरान्त जिन के पुण्य चरित्र स्मरण करने योग्य हैं वे विद्वान् यतीन्द्र जी जिस स्थान को वेद ने अतुल महिमा वाला कहा है उस काशी नाम स्थान को आये ॥ ८८ ॥

निवास मत्र किञ्चिदेव संविधाय सो ऽव्रजत् फतेपुराख्यपत्तनान्तरालगाऽसनीपुरम्। परात्मचिन्तनान्तरायता मवेक्ष्य जान्हवीतटे च दण्डसञ्ज्ञकं स्वलक्षणं तदा जहौ ॥ ८९ ॥

अन्वयः—सः अत्र किञ्चिद् एव निवासम् संविधाय । फतेपुराख्यपत्तनान्तरालगाऽसनीपुरम् अव्रजत् । तदा परात्मचिन्तनान्तरायता मवेक्ष्य । दण्डसञ्ज्ञकम् स्वलक्षणम् जान्हवीतटे जहौ च ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—यतीन्द्र जी यहां कुछ दिन वास करके । फतहपुर नगर के असनी पुर गांव को गये । वहां परमात्मा के ध्यान में विघ्नकारी है यह देख । दण्ड नाम के अपने चिन्ह को गङ्गा तट पर त्याग दिया ॥ ८९ ॥

भावार्थ—इस यात्रा में यतीन्द्र महाराज काशी जी में थोड़े दिन वास कर ज़िला फतहपुर के असनी पुर गांव में आये । वहां दण्ड के धारण करने में बहुत सी क्रिया करनी पड़ती है इस से परमात्मा के ध्यान में विच्छेद होता है यह विचार अपने चिन्ह दण्ड को भी गङ्गा जी के किनारे पर त्याग दिया ॥

मूर्द्धा यस्य निरूप्यते श्रुतिगणै

द्यौं वन्हि रास्यं दृशौ सूर्याचन्द्रमसौ च खं निगदितं नाभिः पदे भूरियम् । तस्येशस्य परं महो हृदि दधत् सम्पावनं देहिनां तस्मात् कान्हपुरं स्वतन्त्रगतिकः सम्प्राप्तवान् युक्तधीः ॥ ९० ॥

अन्वयः—श्रुतिगणैः द्यौः यस्य मूर्द्धा निरूप्यते,। वह्निः आस्यम् , सूर्याचन्द्रमसौ च दृशौ । खम् नाभिः निगदितम् । इयम् भूः पदे (निगदिते)। तस्य ईशस्य देहिनाम् सम्पावनम् परम् महः हृदि दधत् । स्वतन्त्रगतिकः युक्तधीः (सः) तस्मात् कानपुरम् प्राप्तवान् ॥९०॥

शब्दार्थ—वेदों ने स्वर्ग को जिस का मस्तक कहा है । अग्नि को मुख और सूर्य चन्द्रमा को

नेत्र कहा है। आकाश को नाभि और इस पृथिवी को चरण कहा है। उस परमेश्वर के देहधारियों के पवित्र करने वाले उत्कृष्ट तेज को हृदय में धारण करते हुए। स्वेच्छा चारी युक्तबुद्धि यतीन्द्र जी वहां से कानपुर को प्राप्त हुए ॥ ९० ॥

भावार्थ—वेदों ने स्वर्ग लोक को जिस परमेश्वर का मस्तक वर्णन किया है। इसी प्रकार अग्नि को मुख सूर्य चन्द्रमा को दोनों नेत्र, आकाश को नाभि और पृथिवी को चरण कहा है। उस ईश्वर के जगत् पावन उत्कृष्ट तेज को हृदय में ध्यान करते हुए, स्वेच्छा चारी, युक्त बुद्धि, यतीन्द्र जी असनी पुर से कानपुर को आये ॥ ९० ॥

तत्र कान्यकुब्जवंश सम्भवो महीसुरो रामचरन् नामकः * समागमं गतो ऽमुना। सेवते ऽस्य यो ऽनिशं तदादि पादपङ्कजं त्यक्तदेवतान्तरं महीभृतां कथैव का ॥

* रामचरन् इति। तत् पित्रोरुच्चरितानुकरणमेतदिति साधुः ॥

अन्वयः—तत्र कान्यकुब्जवंश सम्भवः रामचरन् नामकः। महीसुरः अमुना समागमम् गतः। यः तदादि अस्य पादपङ्कजम् त्यक्तदेवतान्तरम् अनिशम् सेवते। महीभृताम् कथा एव का ॥९१॥

शब्दार्थ—कानपुर स्थान में कान्यकुब्ज कुल में उत्पन्न रामचरन् नाम के। ब्राह्मण योगीन्द्र जी के साथ समागम को प्राप्त हुए। जो तब से योगीन्द्र जी के चरण कमल को दूसरे देवताओं को छोड़ नित्य सेवा करते हैं। और अन्य राजाओं की कथा ही क्या ॥ ९१ ॥

भावार्थ—उस कानपुर स्थान में कान्यकुब्जों के कुल में उत्पन्न रामचरन् नाम के ब्राह्मण उक्त स्वामी जी के चरणों में प्राप्त हुए। रामचरण जी तब से लेकर आज तक यतीन्द्र जी के चरण कमलों की सेवा करते जाते हैं। जिस रामचरण जी ने और देवताओं की सेवा से यतीन्द्र जी की सेवा को उत्तम समझ देवताओं के आसरे को छोड़ दिया है॥ उन के आगे और राजाओं की गिनती ही क्या अर्थात् कुछ नहीं है ॥९१॥

गयादत्तनामा स लब्धप्रतिष्ठो
ऽस्य पादाम्बुजे जातभक्तिश्च तत्र।
स ताभ्यां सहैव प्रयातः स्वजन्म-
स्थलीं तां विलोक्यैव भूयो नि-
वृत्तः ॥ ९२ ॥

अन्वयः—तत्र च लब्धप्रतिष्ठः सः ग-याद्त्तनामा। अस्य पादाम्बुजे जात-भक्तिः। सः ताभ्याम् सहैव स्वजन्मस्थ-लीम् प्रयातः। ताम् विलोक्य एव भूयः निवृत्तः ॥ ९२ ॥

शब्दार्थ—वहां पर एक प्रतिष्ठित पुरुष गया-दत्त को।भी महाराज यतीन्द्र जी के चरण कमलों में भक्ति उत्पन्न हुई। यतीन्द्र जी उन दोनों के साथ अपनी जन्म भूमि को आये। उस जन्म भूमि का दर्शनमात्र करके फिर लौट गये ॥ ९२ ॥

भावार्थ—उसी प्रकार कानपुर में एक प्रतिष्ठित

पुरुष गयादत्त (खत्री) भी यतीन्द्र महाराज के चरण कमलों में भक्ति करने लगे। इन दोनें सेवकें को साथ लेकर श्री स्वामी जी महाराज अपनी जन्म भूमि के गये। और उस जन्म भूमि का दर्शन करके शीघ्र वहां से चल खड़े हुए ॥ ९२ ॥

कौपीनं स च केवलं यतिपति र्बि-भ्रद् द्युनद्यास्तटे ध्यायन् ज्यो-तिरखण्डमाद्यमनघं तत् सूर्यको-टिप्रभम् । दूरत्यक्तसमस्तचाटु कटुको वर्षातपादिष्वपि च्छाया-मप्यनुपाश्रयन् सुविचरन् कालं व्यनैषीच्चिरम् ॥ ९३ ॥

अन्वयः—दूरत्यक्तसमस्तचाटुकटुकः। केवलं कौपीनं बिभ्रत् स यतिपतिः। वर्षातपादिष्वपि छायाम् अपि अनुपा-श्रयन्। द्युनद्यास्तटे सुविचरन् अखण्डम्

आद्यम् अनघम् सूर्यकोटिप्रभम् तत् ज्योतिः ध्यायन् च । चिरम् कालम् व्यनैषीत् ॥ ९३ ॥

शब्दार्थ–प्रिय अप्रिय भाषण के त्यागी । कौपीन मात्र धारी उस यतीन्द्र जी ने । वर्षा गर्मी शीत काल में भी छाया का आसरा छोड़ । गङ्गा तट में विचरते और अखण्ड सब के आदि निर्मल कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस ज्योति का ध्यान करते २ । बहुत काल को व्यतीत किया ॥ ९३ ॥

भावार्थ—मीठे कड़ुए वचनों के त्यागी कौपीन मात्र धारी उस यतीन्द्र महाराज ने जाड़ा गर्मी वर्षा में भी छाता आदि छाया का आसरा छोड़ गंगा तट में भ्रमण करते और अखण्ड, सर्व के आदि, निर्मल, और कोटि सूर्य के समान प्रकाशमान उस ज्योति का ध्यान करते २ बहुत काल को व्यतीत किया ॥९३॥

एवं स तीर्थानि महीतलान्तर्गतानि सर्वाणि ददर्श विद्वान् ।

अशेषसङ्कल्पविकल्पहीनः क्षेत्रं हरिद्वार मथाश्रितो ऽभूत् ॥९४॥

अन्वयः—अशेषसङ्कल्पविकल्पहीनः सः विद्वान् । एवम् महीतलान्तर्गतानि सर्वाणि तीर्थानि ददर्श । अथ हरिद्वारम् क्षेत्रम् आश्रितः अभूत् ॥ ९४ ॥

शब्दार्थ—सब सङ्कल्प और विकल्प से रहित उस विद्वान् ने । इसी प्रकार से पृथिवी मण्डल के सब तीर्थों का दर्शन किया । उपरान्त हरिद्वार क्षेत्र का सेवन किया ॥ ९४ ॥

भावार्थ—सङ्कल्प करना और विकलप करना इन दोनों से रहित उस विद्वान् यतीन्द्र ने इसी प्रकार से अर्थात् गर्मी और वर्षा आदि में भी छाया के आसरे को छोड़ कर पृथिवी मण्डल के सब तीर्थों की यात्रा की । उपरान्त हरिद्वार में आकर कुछ दिन वास किया ॥ ९४ ॥

तत्र पाटलिपुत्रान्तराघोपुरनिवा-

सवान् । अनन्तरामनामासीच्
छाकद्वीपी द्विजः सुवित् ॥९५॥

अन्वयः—तत्रपाटलिपुत्रान्तराघोपुर निवासवान् । सुवित् शाकद्वीपी द्विजः अनन्तरामनामा आसीत् ॥ ९५ ॥

शब्दार्थ—वहां पटना ज़िला के राघोपुर ग्राम निवासी । एक विद्वान् शाकद्वीपी अनन्त राम नाम के रहते थे ॥ ९५ ॥

भावार्थ—उस हरिद्वार तीर्थ में पटना ज़िला के राघोपुर गांव निवासी एक बड़े विद्वान् शाकद्वीपी ब्राह्मण अनन्त राम नाम के रहते थे ॥ ९५ ॥

तस्मादधीतवांस्तत्र प्रस्थानत्रित-
यीमयम् । निगूहन्ति सदात्मानं
ज्ञानिनो बहुचेष्टितैः ॥ ९६ ॥

अन्वयः—तत्र अयम् तस्मात् प्रस्थानत्रितयीम् अधीतवान् । ज्ञानिनः सदा आत्मानम् बहुचेष्टितैः निगूहन्ति ॥ ९६ ॥

शब्दार्थ—वहां पर इन यतीन्द्र महाराज ने उस विद्वान से प्रस्थान त्रितयी को पढ़ा । ज्ञानी लोग सदा अपने को बहुत सी चेष्टाओं से छिपाते हैं ॥

भावार्थ—उस हरिद्वार क्षेत्र में यतीन्द्र जी महाराज ने श्री अनन्तरामजी के मुख से शारीरक भाष्य, गीता भाष्य और उपनिषद् भाष्य नाम प्रस्थान त्रयी का श्रवण किया। यद्यपि उक्त स्वामी जी सर्वज्ञ थे तौ भी पढ़ा इस का यह कारण जान पड़ता है कि ज्ञानी लोग सदा से अपने का अनेक उपायों से छिपाये रहते हैं । मनु जी की भी ऐसी ही आज्ञा है यथा "जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्" इति ॥ दूसरे स्वामी महाराज सब का यह शिक्षा दिया चाहते थे कि (विद्या वही सफल होती है जो गुरु परम्परा से चली आती है ॥ स्वयं पुस्तक पढ़ लेने से उत्तम फल दायक नहीं होती) ॥ ९६ ॥

एवं याताः प्रशमनिरतस्यास्य संवत्सरास्तु चत्त्वारिंशत् पुनरपि तथा जाह्नवीतीरमार्गः । ध्यायं ध्यायं सतत मखिलाधीशतत्त्वं स

योगी मूर्त्तं ब्रह्मस्मरहरपुरीं प्राप्तवान् प्राप्त्यनीहः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—एवम् प्रशमनिरतस्य अस्य। चत्त्वारिंशत् संवत्सराः तु याताः। प्राप्त्यनीहः स योगी जाह्नवीतीरमार्गः। अखिलाधीशतत्त्वम् सततम् ध्यायम् ध्यायम्। पुनरपि मूर्त्तं ब्रह्मं स्मरहर पुरीम् प्राप्तवान् ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—इस प्रकार शान्ति में तत्पर स्वामी जी का। चालीसवां वर्ष व्यतीत हुआ। प्राप्ति की चेष्टा से रहित योगी जी गङ्गा किनारे २ चलते हुए। परमेश्वर तत्त्व को निरन्तर ध्यान करते हुए। फिर भी कामदेव के शत्रु की मूर्त्तिमान् ब्रह्मस्वरूप पुरी को प्राप्त हुए ॥ ९७ ॥

भावार्थ—इस प्रकार शान्तचित्त योगीन्द्र महाराज का चालीसवां वर्ष पूरा हुआ। अनन्तर पूर्ण काम योगी जी गङ्गा जी के तीर विचरते विचरते और सर्वेश्वर तत्त्व परब्रह्म का निरन्तर ध्यान करते करते

महादेव जी की मूर्त्तिमान ब्रह्म स्वरूप काशीपुरी को फिर प्राप्त हुए ॥ १७ ॥

संन्यासात् परतस्त्रयोदश समाः स प्राज्ञवर्यो ऽनिशम् सर्वाण्येव तपांसि दुष्कृततमान्या ऽऽसेवतातिक्षमः । आनन्दोपवने ऽधिकाशि विदिताद् दुर्गालयात् प्राक् स्थिते प्राप्ताऽशेषसुविज्ञकामितपदः कौपीनमप्यत्यजत् ॥१८॥

अन्वयः—अतिक्षमः सः प्राज्ञवर्य्यः संन्यासात् परतः। त्रयोदशसमाः दुष्कृततमानि सर्वाणि एव तपांसि आसेवत। प्राप्ताऽशेषसुविज्ञकामितपदः । अधिकाशि विदितात् दुर्गालयात् प्राक् स्थिते। आनन्दोपवने कौपीनम् अपि अत्यजत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—अति सहन शील, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ स्वामी जी ने संन्यास के उपरान्त । तेरह वर्ष तक सब बड़े कठिन तपों का सेवन किया । उत्तम ज्ञानियों के अभिलषित पद को प्राप्त स्वामी जी ने । काशी जी में प्रसिद्ध श्री दुर्गा जी के मन्दिर के पूर्व ओर स्थित। आनन्द वन में लंगोटी को भी त्याग कर दिया ॥ ९८ ॥

भावार्थ—अति सहन शील और ज्ञानियों में श्रेष्ठ स्वामी जी ने संन्यास धारण करने के उपरान्त तेरह वर्ष तक सब बड़े कठिन तपों का सेवन किया ॥ सब ज्ञानी लोग जिस पद की आकांक्षा करते हैं उस परमात्म स्वरूप लाभ रूप परमहंस पद को प्राप्त स्वामी जी ने काशी जी में प्रसिद्ध, दुर्गा जी के पूर्व भाग में स्थित आनन्द बाग में कौपीन का भी त्याग कर दिया ॥ क्योंकि निःशेष देहाभिमान त्याग पूर्वक परमात्मस्वरूप लाभ रूप परमहंस पद जिन को प्राप्त है उन को कौपीन से भी कुछ प्रयोजन नहीं है । अर्थात् मनुष्य को जब यह देहाभिमान होता है कि हम पुरुष हैं वा स्त्री तब वस्त्र धारण करता है जिसने देहाभिमान को भी त्याग दिया उसे कौपीन से भी कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ९८ ॥

चत्त्वारिंशत्तमे वर्षे जनुषः स यतीश्वरः । काशिकामागतो भूयस्ततश्चात्रैव वर्त्तते ॥ ९९ ॥

अन्वयः—सः यतीश्वरः जनुषः चत्वारिंशत्तमे वर्षे। भूयः काशिकाम् आगतः । ततः च अत्र एव वर्त्तते ॥ ९९ ॥

शब्दार्थ—उक्त यतीश्वर जी, जन्म काल से चालीसवें वर्ष में । फिर काशीपुरी को आये । तव से यहां ही वर्त्तमान हैं ॥ ९९ ॥

भावर्थ—उक्त यतीन्द्र जी महाराज अपनी चालीस वर्ष की अवस्था में दूसरी वार जव काशीपुरी में आये तव से काशी जी में विराजमान हैं ॥ ९९ ॥

आनन्दस्य वनं गिरीशनगरी गीता पुरा वित्तमै रानन्दोपवनं च तत् प्रविदितं तस्यां यथार्थाह्वयम् । मात्रां यस्य समाश्रयन्ति सक-

लानन्दास्तदानन्दयुक् सानन्दं कुरुते स तत्र वसतिं श्रीभास्करानन्द वित् ॥ १०० ॥

अन्वयः—पुराविज्ञत्तमैः गिरीशनगरी आनन्दस्य वनम् गीता। तस्याञ्च यथार्थाह्वयम् तत् आनन्दोपवनम् प्रविदितम्। तत्र सकलानन्दाः यस्य मात्रां समाश्रयन्ति। तदानन्दयुक् सः श्रीभास्करानन्द वित् सानन्दं वसतिम् कुरुते ॥ १०० ॥

शब्दार्थ—पुराण के जानने वालों में श्रेष्ठ व्यास जी से महादेव जी की नगरी आनन्द का वन कही गई है। वहां अर्थानुसार नामधारी आनन्द वन प्रसिद्ध है। उस आनन्द बाग में सब आनन्द जिस आनन्द के एक कण से उत्पन्न हुए हैं। उस आनन्द से युक्त श्री भास्करानन्द विद्वान् आनन्द से वास करते हैं ॥ १०० ॥

भावार्थ—पुराणाचार्यों में श्रेष्ठ श्रीवेदव्यास आदि ऋषियों ने महादेव जी की नगरी काशी पुरी को आनंद का वन कहा है उस काशी पुरी में अपने नाम के अर्थ से युक्त आनन्द वन नाम का वगीचा प्रसिद्ध है वहां, जिस आनन्द के एक विन्दु से संसार के सब आनन्द उत्पन्न होते हैं उस परम आनन्द सुख में मग्न श्रीभास्करानन्द जो विद्वान् वास कर रहे हैं ॥ १०० ॥

तस्य स्तवं परमपूरुषतां गतस्य यत् प्राणिनो विदधते किमु तत्र चित्रम् । आनन्दवेगपुलकायित मञ्जरीकास्तं भूरुहा अपि शकुन्तरुतैः स्तुवन्ति ॥ १०१ ॥

अन्वयः—प्राणिनः परमपूरुषताम् गतस्य तस्य । स्तवम् विदधते तत्र किमु चित्रम् । यत् आनन्दवेगपुलकायित-मञ्जरीकाः भूरुहाः अपि । तम् शकुन्त-रुतैः स्तुवन्ति ॥ १०१ ॥

शब्दार्थ—मनुष्य लोग परमेश्वर के सारूप्य को प्राप्त उस (यतीन्द्र जी) की। स्तुति करते हैं इस में क्या आश्चर्य है। क्योंकि आनन्द के वेग की जो रोमावली उस के समान मञ्जरी को धारण किये हुए वृक्ष भी। उन की पक्षियों के शब्द द्वारा स्तुति करते हैं ॥ १०१ ॥

भावार्थ—परमेश्वर के सारूप्य मुक्ति को प्राप्त श्री स्वामी जी की मनुष्य लोग स्तुति किया करते हैं इस में आश्चर्य ही क्या है क्योंकि आनन्द के वेग से मञ्जरी रूप रोमावली को धारण कर वृक्ष लोग भी पक्षियों के शब्द द्वारा उन की स्तुति करते रहते हैं ॥ १०१ ॥

तस्मिन् न केवलमयं विपिनान्त-
राले ध्यानावधानहृदयेक्षितदी-
प्तिरस्ति । तच्छान्तिसंयमसमा-
क्रमशान्तचित्ता आभान्ति किन्तु
मुनय स्तरवो ऽपि तत्र ॥१०२॥

अन्वयः—तस्मिन् विपिनान्तराले केव-

लम् अयम् । ध्यानावधानहृदयेक्षित-दीप्तिः न अस्ति । किन्तु तत्र तच्छान्ति संयमसमाक्रमशान्तचित्ताः । तरवः अपि मुनयः आभान्ति ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ—उस आनन्द वन के मध्य में केवल यतीन्द्र जी ही । ध्यान में एकाग्र चित्त से पर-मेश्वर ज्योति के देखने वाले हैं यही नहीं । वरन उस वन में यतीन्द्र जी की शान्ति और संयम के प्रताप से शान्त चित्त । वृक्ष भी मुनियों के सदृश मालूम पड़ते हैं ॥ १०२ ॥

भावार्थ—उस आनन्द वन के बीच ध्यान में एकाग्र चित्त से हृदय में ज्योतिःस्वरूप के देखने वाले अकेले स्वामी जी हों यह नहीं है वरन स्वामी जी की शान्ति और सँय्यम के प्रताप के संसर्ग से समीप के वृक्ष भी शान्त चित्त से हो गए हैं इस से वे भी ऋपियों के सदृश मालूम पड़ते हैं ॥ १०२ ॥

हंसावलीधवलधाम मनोभिरामं कामं न तत्र कुरुते नवमल्लिका-

नाम् । सूनं न चित्रमिदमत्र वि-
भावयन्ते नूनं जना यदिह का-
मरिपो रभेदः ॥ १०३ ॥

अन्वयः—तत्र हंसावलीधवलधाम । मनोभिरामम् नवमल्लिकानाम् सूनम् कामम् न कुरुते । जनाः अत्र इदम् चित्रम् न विभावयन्ते नूनम् । यद् इह कामरिपोः अभेदः ॥ १०३ ॥

शब्दार्थ—उस आनन्द वन में, हंसों की पङ्क्ति के समान श्वेत गृह । और मनोहर नई चमेली के फूल कामदेव के विकार को उत्पन्न नहीं करते। मनुष्य लोग यहां इसे आश्चर्य ही नहीं मानते। क्योंकि यहां कामदेव के शत्रु से अभिन्न स्वामी जी विद्यमान हैं ॥ १०३ ॥

भावार्थ—उस आनन्द वन में हंसों के पर के समान श्वेत गृह और नई चमेली के सुन्दर फूल किसी के चित्त में कामदेव को उत्पन्न नहीं करते हैं । कोई

भी मनुष्य आनन्द बाग की इस बात पर आश्चर्य ही नहीं करता क्योंकि इस बाग मे कामदेव के शत्रु शिव जी से अभिन्न अर्थात् साक्षात् शिवमूर्त्ति श्री भास्करानन्द जी विराजमान हैं ॥ १०३ ॥

विलसत् कुसुमं सुरुवच् छकुनं
प्रचलत् तरुकं प्रबलत् सुकृतम् ।
विलसन्मुनिसङ्घमनोविभवं वन
मेन मसेवत चित्रकथम् ॥१०४॥

अन्वयः—विलसत् कुसुमम् सुरुवत् शाकुनम्। प्रचलत् तरुकम् प्रबलत् सुकृतम् । विलसन्मुनिसङ्घमनोविभवम्। चित्रकथम् वनम् एनम् असेवत ॥ १०४ ॥

शब्दार्थ—जिस में फूल खिल रहे हैं पक्षी लोग मधुर शब्द कर रहे हैं। वृक्ष हील रहे हैं सुकृत वृद्धि पर है । मुनियों के मन की सम्पत्ति पुष्ट होती जाती है । ऐसा अद्भुत वन भी स्वामी जी की सेवा करता है ॥ १०४ ॥

भावार्थ—जिस में सुन्दर फूल खिल रहे हैं सुन्दर पक्षी लोग मधुर शब्द कर रहे हैं मंद वायु से वृक्ष हिल रहे हैं और पुण्य वृद्धि पर है और मुनियों के मन का घन अर्थात् समाधि सामर्थ्य पुष्ट होता जाता है ऐसा अद्भुत आनन्दवन भी शिवस्वरूप स्वामी जी की सेवा करता है ॥ १०४ ॥

कुसुमे कुसुमे शकुने शकुने क्षि-
तिजे क्षितिजे मनुजे मनुजे ।
अवधूततमोंशरजोंशचयं रज एव
विराजति तस्य पदः ॥ १०५ ॥

अन्वयः—कुसुमे कुसुमे शकुने शकुने । क्षितिजे क्षितिजे मनुजे मनुजे। अवधूत तमोंशरजोंशचयम् । तस्य पदः रजः एव विराजति ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—फूल फूल में पक्षी पक्षी में । वृक्ष वृक्ष में मनुष्य मनुष्य में । तमोगुण और रजोगुण के अंशों के समूह को दूर कर देने वाली। स्वामी जी के चरण की धूलि ही विराजमान है ॥१०५॥

भावार्थ—उस आनन्द वन के सब फूलों में सब पक्षियों में सब वृक्षों में सब मनुष्यों में अर्थात् सब जगह रजोगुण तमोगुण के अंशों को दूर करने वाली श्री स्वामी जी के चरणों की धूलि विराजमान है ॥ १०५ ॥

शशिरुक् शशिरुक् कमलं कमलं कुमुदं कुमुदं वद कम्बुरयम्। कुरुता मतिवक्रचलो यतिनः स्थिरराजितसत्त्वगुणानुकृतिम्॥१०६॥

अन्वयः—शशिरुक् शशिरुक् कमलम् कमलम् कुमुदम् कुमुदम्। तर्हि किम् अतिवक्रचलः अयम् कम्बुः। यतिनः स्थिरराजितसत्त्वगुणाऽनुकृतिम्। कुरुताम् (नेतिशेषः) ॥ १०६ ॥

शब्दार्थ—चन्द्रमा की कान्ति तो मृग के धारण करने वाले की कान्ति है और कमल (क) पानी का मल है और कुई का फूल भी कुत्सित

मुद को उत्पन्न करता है।(तो क्या) अत्यन्त टेढ़ा और चलायमान यह शंख यतीन्द्र जी के स्थिर विराजमान सत्त्वगुण के सदृश हो सकता है ? (कभी नहीं) ॥ १०६ ॥

भावार्थ—स्वामी जी के अति निर्मल उज्वल सत्त्वगुण के समान निर्मल कोई वस्तु नहीं है । जिस की उपमा देसकें । देखो चन्द्रमा की कान्ति उज्वल तो है पर वह शशिरुक् अर्थात् शशी की, मृगधारी की, पशु वाले की (रुक्) चमक है। और उज्वल कमल की ओर देखते हैं तो यह कमल (अर्थात् क का) जल का मल है और कुमुद उज्वल कुईं के फूल की ओर देखें तो यह कु (कुत्सित) मुद (हर्ष) को देता है तो क्या टेढ़ा मेढ़ा चलायमान यह शंख यतीन्द्र जी के स्थिर विराजमान सत्त्वगुण के सदृश हो सकता है ? कधी नहीं हो सकता ॥ अर्थात् स्वामी जी के सत्त्वगुण की उपमा के लिये उक्त उज्वल तीन पदार्थ मिले सो तीनों में दोष देख पड़े इस से ये भी उपमा देने के योग्य नहीं हैं अर्थात् स्वामी जी का सत्त्वगुण अनुपम है ॥ १०६ ॥

अगुणोऽपि गुणी न धनी क्षिति-
पालसहस्रनिषेवितपादरजः। अ-

पटो ऽपि समस्त दिगन्त पटो ऽ-
तिविचित्रचरित्रविभूति रयम् ॥

अन्वयः—अयम् अगुणः अपि गुणी । धनी न, क्षितिपालसहस्रनिषेवितपाद-रजः । अपटः अपि समस्तदिगन्त पटः । (अतः) अतिविचित्रचरित्र विभूतिः ॥ १०७ ॥

शब्दार्थ—यतीन्द्र जी गुण रहित हैं तौ भी गुणी हैं । धनी नहीं है तौ भी हजारें राजाओं से चरण कमल के रज की सेवा की जाती है । वस्त्र रहित हैं तौभी सब दिशा ही वस्त्र हो रही हैं। (इस से) स्वामी जी के अति अद्भुत चरित और ऐश्वर्य हैं ॥ १०७ ॥

भावार्थ—श्री योगीन्द्र महाराज के चरित्र और ऐश्वर्य अद्भुत देख पड़ते हैं । अर्थात् स्वामी जी सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण से परे हैं तौ भी विद्या आदि गुण से युक्त हैं ॥ स्वामी जी धनी नहीं हैं तौभी हजारें राजा लोग स्वामी जी के चरण कमल

की सेवा करते रहते हैं। वस्त्र रहित हैं तौभी दशोदिशा आपही उन का वस्त्र हो रहीं हैं अर्थात् दिगम्बर कहे जाते हैं इस से बढ़कर और क्या आश्चर्य होगा ॥१०७॥

वृतशास्त्रगतिः परमार्थमतिः पद-
कञ्जनमद्वसुधाधिपतिः । स्मित-
ततोषितसर्वमनुष्यततिर्यतिरात्म
नि रज्यति पुण्यकृतिः ॥ १०८॥

अन्वयः—वृतशास्त्रगतिः परमार्थमतिः। पदकञ्जनमद्वसुधाधिपतिः । स्मिततोषितसर्वमनुष्यततिः पुण्यकृतिः । यतिः आत्मनि रज्यति ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ—जिस ने शास्त्रानुसार गति को स्वीकार किया है परमार्थ में जिस की बुद्धि है। और पृथिवी के पति जिस के चरण कमल को प्रणाम कर रहे हैं जिस ने सब मनुष्यों के समुदाय को मुसक्यान से प्रसन्न कर दिया है। वह पुण्यात्मा यतीन्द्र जी आत्मचिन्तन में लग रहे हैं॥

भावार्थ—जो शास्त्रानुसार आचरण करते हैं परमार्थ अर्थात् मोक्ष मात्र में अपनी वुद्धि लगाये हैं। और जिन के चरण कमल को राजा लोग प्रणाम करते रहते हैं। और अपने मुसक्यान से मनुष्यों को प्रसन्न कर दिया करते हैं ऐसे पुण्य कुशल श्री स्वामी जी आत्मचिन्तन में रत हैं॥ १०८॥

कुसुमेषुमहेषुवृते विजने कलहंसजयद्वनितागमने । मृदुशीतसुगन्धिचलत्पवने नहि कोऽपि प्रमाद्यति तत्र वने ॥ १०९ ॥

अन्वयः—कुसुमेषुमहेषुवृते कलहंस जयद्वनितागमने। मृदुशीतसुगन्धिचलत्पवने विजने तत्र वने। कः अपि न हि प्रमाद्यति ॥ १०८ ॥

शब्दार्थ—कामदेव के वाणों से व्याप्त और स्त्रियों की मंद गति से भी उत्तम कलहंस की गति वाले। और कोमल शीतल सुगन्ध पवन

वाले उस पवित्र वन में। कोई भी जीव प्रमाद को नहीं करता ॥ १०९ ॥

भावार्थ—कामदेव का आयुध पुष्प है स्त्री आलम्बन है शीतल मन्द सुगन्ध वायु आदि सहायक हैं जनशून्यस्थान स्थान है। सो वह आनन्दवन कामदेव के आयुध रूप पुष्पों से भरा है स्त्रियों की मन्दगति को भी कलहंस चल रहे हैं शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी वह रहा है और एकान्त भी है इतनी कामदेव की सामिग्री के रहते भी उस वन में स्वामी जी महाराज के प्रभाव से कोई भी जीव प्रमाद युक्त अर्थात् काम के आधीन नहीं होता ॥ १०९ ॥

कलधौतसुशोभितसौधततिः कलहंसगतिः सुदती सुततिः। कलनादिरिरंसुपतत्रितति: कलयेन्न वशं प्रतिपक्षततिः ॥ ११० ॥

अन्वयः—कलधौतसुशोभितसौधततिः। कलहंसगतिः सुदतीसुततिः। कलनादिरिरंसुपतत्रिततिः प्रतिपक्षततिः।

(तम्) वशम् न कलयेत् ॥ ११० ॥

शब्दार्थ—सुवर्ण के समान चमकीले महलों के समुदाय। हंस के समान सुन्दर चालवाली सुन्दर दांत वाली स्त्रियों की पंक्ति। और मधुर स्वर वाले मत्त पक्षियों की पङ्क्ति (इन) वैराग्य के शत्रुओं का समुदाय। उन को अपने वस में न कर सका॥ ११० ॥

भावार्थ—सुवर्ण के समान चमकीले घर, हंसगामिनी सुन्दर दांत वाली स्त्रियां और मधुर स्वर वाले मत्त पक्षी इत्यादि वैराग्य के शत्रुओं के दल के दल महाराज को अपने वश में न कर सके। अर्थात् महाराज का दृढ़ वैराग्य अचल विद्यमान है ॥११०॥

कलिकालकरालमुखातिविभीत-
मुमुक्षुसुरक्षणदक्षदयः। स च पु-
त्रकलत्रसुखैषिजनार्थकृते ननु क-
ल्पतरो रुदयः ॥ १११ ॥

अन्वयः—कलिकालकरालमुखातिवि-

भीतमुमक्षुसुरक्षणदक्षदयः । स च पुत्र-कलत्रसुखैषिजनार्थकृते। ननु कल्पतरोः उदयः अस्ति ॥ १११ ॥

शब्दार्थ—कलि काल के भयङ्कर मुख से अत्यन्त डरे हुए मोक्षार्थी लोगों की रक्षा करने में समर्थ दयावान श्रीस्वामी जी, पुत्र स्त्री आदि के सुख चाहने वाले जनों के लिये तो मानो कल्पतरु वृक्ष रूप उदय हुए हैं ॥ १११ ॥

भावार्थ—कलिकाल के भयङ्कर मुख अर्थात् काम क्रोध आदि से अत्यन्त डरे हुए मोक्ष चाहने वाले जनों की रक्षा करने में बड़ी दया करते हैं और जो लोग स्त्री पुत्र आदि ही के सुख को चाहते हैं उन के लिये भी स्वामी जी महाराज ऐसे हैं मानो कल्प वृक्ष स्वर्ग से आकर विराजमान हैं ॥ १११ ॥

शिव एव जगत्त्रितयीजनकः करुणेक्षणदत्तसुरेन्द्रपदः । पद-सेविसरोजभवादिसुरः निजभूति-विभूषितनैजपुरः ॥ ११२ ॥

अन्वयः—जगत्त्रितयीजनकः, करुणेक्षणादत्तसुरेन्द्रपदः । पदसेविसरोजभवादिसुरः । शिव एव निजभूतिविभूषितनैजपुरः अस्ति इतिशेषः ॥ ११२ ॥

शब्दार्थ—तीनों लोक के उत्पन्न करने वाले, अपनी कृपाकटाक्ष से इन्द्र आदि पदवी के देने वाले । और जिन के चरण की सेवा ब्रह्मा आदि देव किया करते हैं । सो शिव जी मानो अपनी विभूति से अपने धाम काशी की शोभा कर रहे हैं ॥ ११२ ॥

भावार्थ—उक्त स्वामी जी के तप का प्रभाव देख ऐसा जाना जाता है कि जो शिव जी तीनो लोक के उत्पन्न कर्त्ता हैं और अपनी कृपाकटाक्ष से इन्द्र आदि देवपदवी को दिया करते हैं और ब्रह्मा आदि देवता जिन के चरण की सेवा करते हैं वही शिव जी श्री १०८ भास्करानन्द जी का अवतार धारण कर अपनी विभूति से अपनी पुरी काशी जी की शोभा कर रहे हैं ॥ ११२ ॥

अणिमादिकसिद्धिचया निखि-

ला नन्नु यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभ-
वाः । स रमेशदृगर्चितपादयुगो
गिरिशः स्मृतिमेति तदीक्षणतः ॥

अन्वयः—ननु निखिलाः अणिमादिकसिद्धिचयाः । यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभवाः । रमेशदृगर्चितपादयुगः सः गिरिशः । तदीक्षणतः स्मृतिम् एति ॥११३॥

शब्दार्थ—क्योंकि सब अणिमा आदि सिद्धि के समूह । जिस की दृष्टि के सुन्दर पक्ष्म से उत्पन्न होते हैं। और लक्ष्मी पति ने अपनी दृष्टि से जिन के चरणों की पूजा किया था वे महादेव जी। इन स्वामी जी के दर्शन से स्मृति में आजाते हैं ॥ ११३ ॥

भावार्थ—क्योंकि अणिमा आदि सिद्धियां जिन की दृष्टि की पलकफेरे से सेवकों को मिला करती हैं और लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान ने अपने नेत्र से जिन के चरणों की पूजा किया था वे शिव जी स्वामी जी के दर्शन से स्मृति में आजाते हैं। पुष्प-

दन्ताचार्य ने नेत्र चढ़ाने की कथा लिखी है यथा विष्णु भगवान ने सहस्र कमलों से नित्य शिव पूजन का नियम ले नित्य १००० कमल से पूजा किया करते थे। एक दिन शिव जी ने विष्णु के भक्ति की परीक्षा लेने के लिये पूजन के समय एक कमल हर लिया। विष्णु ने शिवसहस्र नाम से कमल चढ़ाते समय नौ सौ निन्यानवे कमल पाया तब विचारा कि यदि हम कमल लेने को जावें या किसी से लाने को कहें तो पूजा में विक्षेप होगा यह ठीक नहीं है और मुझे शिव जी भी कमल नयन कहते हैं इस से सङ्कल्प पूरा करने के लिये अपना एक नेत्र चढ़ा देता हूं यह ठान अपना एक नेत्र शिव जी को चढ़ा दिया तब शिव जी अति प्रसन्न हुए इत्यादि ॥११३॥

तमाराद्धुं गच्छत्क्षितिपतिशिरः-सङ्गविलसत्किरीटप्रोतोद्यन्मणिकिरणचित्र स्तरुचयः अभूद् यद् भूपानामनुगतरमाभूषणरुचि र्न तच्चित्रं योगे ऽनुचरति यतः सिद्धिनिवहः ॥ ११४ ॥

ला. ननु यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभवाः । स रमेशदृगर्चितपादयुगो गिरिशः स्मृतिमेति तदीक्षणतः ॥

अन्वयः—ननु निखिलाः अणिमादिकसिद्धिचयाः । यस्य दृगञ्चितपक्ष्मभवाः । रमेशदृगर्चितपादयुगः सः गिरिशः । तदीक्षणातः स्मृतिम् एति ॥११३॥

शब्दार्थ—क्योंकि सब अणिमा आदि सिद्धि के समूह । जिस की दृष्टि के सुन्दर पक्ष्म से उत्पन्न होते हैं। और लक्ष्मी पति ने अपनी दृष्टि से जिन के चरणों की पूजा किया था वे महादेव जी। इन स्वामी जी के दर्शन से स्मृति में आजाते हैं ॥ ११३ ॥

भावार्थ—क्योंकि अणिमा आदि सिद्धियां जिन की दृष्टि की पलकफेरे से सेवकों को मिला करती हैं और लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान ने अपने नेत्र से जिन के चरणों की पूजा किया था वे शिव जी स्वामी जी के दर्शन से स्मृति में आजाते हैं। पुष्प-

दन्ताचार्य ने नेत्र चढ़ाने की कथा लिखी है यथा विष्णु भगवान ने सहस्त्र कमलों से नित्य शिव पूजन का नियम ले नित्य १००० कमल से पूजा किया करते थे। एक दिन शिव जी ने विष्णु के भक्ति की परीक्षा लेने के लिये पूजन के समय एक कमल हर लिया। विष्णु ने शिवसहस्त्र नाम से कमल चढ़ाते समय नौ सौ निन्यानवे कमल पाया तब विचारा कि यदि हम कमल लेने को जावें या किसी से लाने को कहें तो पूजा में विक्षेप होगा यह ठीक नहीं है और मुझे शिव जी भी कमल नयन कहते हैं इस से सङ्कल्प पूरा करने के लिये अपना एक नेत्र चढ़ा देता हूं यह ठान अपना एक नेत्र शिव जी को चढ़ा दिया तब शिव जी अति प्रसन्न हुए इत्यादि ॥११३॥

तमाराद्धुं गच्छत्क्षितिपतिशिरः-
सङ्गविलसत्किरीटप्रोतोद्यन्म-
णिकिरणचित्र स्तरुचयः अभूद्
यद् भूपानामनुगतरमाभूपणरु-
चि र्न तच्चित्रं योगे ऽनुचरति
यतः सिद्धिनिवहः ॥ ११४ ॥

अन्वयः—तम् आराद्धुम् । गच्छत्क्षितिपतिशिरःसङ्गविलसत्किरीटप्रोतोद्यन्मणिकिरणचित्रः तरुचयः । भूपानाम् अनुगतरमाभूषणरुचिः यत् अभूत् तत् चित्रम् न । यतः योगे सिद्धिनिवहः अनुचरति ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ—स्वामी जी की सेवा के लिये । आते हुए राजा लोगों के शिर पर शोभित जो मुकुट उस के मणि की किरणों से अनेक वर्ण जो वृक्ष समुदाय उस ने । राजा लोगों के साथ आई हुई राज लक्ष्मी के भूषणों की शोभा को धारण किया यह आश्चर्य नहीं है । क्योंकि योग के पीछे सिद्धि का समूह चला करता है ॥११४॥

भावार्थ—उक्त स्वामी जी की सेवा के लिये आते जाते हुए राजा लोगों के मुकुट मणि की प्रभा से रंग विरंगे उस आनन्द बाग के वृक्ष समूह वहां आते हुए राजा लोगों के साथ आई हुई राज्य लक्ष्मी के आभूषण शोभा को धारण करते हैं यह अद्भुत

बात नहीं है क्योंकि योग के पीछे सिद्धि आप से आप आती है ॥ ११४ ॥

एवं तत्र निवासमस्य दधतो याताः समा विंशतिः प्राप्तः षष्टितमश्च दीर्घतपसः संवत्सरो जन्मतः । दृष्ट्वा दर्शनकाङ्क्षिविश्वजनतासम्मर्दकोलाहलं विक्षेपं रहसि स्थितिं स विदधे लोकागतिञ्चारुणत् ॥ ११५ ॥

अन्वयः—तत्र एवम् निवासम् दधतः । दीर्घतपसः अस्य विंशतिः समाः याताः । जन्मतः षष्टितमः च संवत्सरः प्राप्तः । सः दर्शनकाङ्क्षिविश्वजनतासम्मर्दकोलाहलम् विक्षेपम् दृष्ट्वा । रहसि स्थितिम् विदधे लोकागतिम् च अरुणत् ॥११५॥

शब्दार्थ—उस स्थान में उक्त प्रकार से वास करते हुए। बड़े तपस्वी श्री स्वामी जी का वीस वर्ष वीत गया। और जन्म से साठवां वर्ष आकर प्राप्त हुआ। स्वामी जी ने दर्शन की इच्छा वाले सब लोगों की भीड़ को और कोलाहल को समाधि का विघ्न करता है यह देख कर। एकान्त में स्थिति किया और लोगों के आने को रोका॥ ११५॥

भावार्थ—उस आनन्द बाग में उक्त प्रकार के ऐश्वर्य्य के साथ निवास करते हुए बड़े तपस्वी स्वामी महाराज को वीस वर्ष वीत गया। और जन्म से साठवां वर्ष आकर प्राप्त हुआ। उस समय स्वामी जी अपने दर्शन के लिये आते जाते हुए लोगों की भीड़ और कोलाहल को बढ़ते २ तपस्या का विघ्न कर रहा है यह देख कर आत्मचिन्तन के लिये एकान्त में स्थित हुए। और लोगों के आगमन को भी बन्द किया॥ ११५॥

कीर्त्तिमरालिकया ऽतिविनोदि-
तनाकविलासवतीकः। प्रभुना-

रायणसिंह महोदय काशीधरणि-
नरेशः। निजधाम्नि स्मरणार्थ म-
मुष्य मनोरमकामदमूर्त्तिं रक्षति
सादरमेवमुपैति न कोऽत्र मनो-
रथपूर्त्तिम् ॥ ११६ ॥

अन्वयः—कीर्त्तिमरालिकया अतिवि-
नोदितनाकविलासवतीकः। प्रभुनाराय-
णसिंहमहोदयकाशीधरणिनरेशः। नि-
जधाम्नि अमुष्य स्मरणार्थम्। मनोरम
कामदमूर्त्तिम् सादरम् रक्षति। अत्र कः
एव मनोरथ पूर्त्तिम् न उपैति। (अपितु
सर्व एव इति शेषः) ॥ ११६ ॥

शब्दार्थ—अपनी कीर्त्ति रूपी हंसी से स्वर्ग
की स्त्रियों को अति प्रसन्न करने वाले। प्रभु
नारायण सिंह महाराज काशी के राजा ने।

अपने घर में स्वामी जी के स्मरण के लिये। स्वामी जी की सुन्दर मूर्त्ति को बड़े आदर से रक्खा है। ऐसी भक्ति से कौन मनोरथ की पूर्णता को नहीं पहुंचता। वरन सब कोई पहुंचते हैं ॥ ११६ ॥

भावार्थ—जिस की कीर्त्ति रूपी हंसी से स्वर्ग वासी स्त्री लोग क्रीड़ा करती हैं ऐसे काशी जी के राजा महाराज प्रभुनारायण सिंह वहादुर ने नित्य स्मरण के लिये उक्त स्वामी जी की मूर्त्ति के वड़े आदर से अपने गृह में रक्खा है और नित्य दर्शन करते हैं ॥ देखो इस प्रकार की भक्ति से किस का मनोरथ पूरा नहीं होता अर्थात् सव का पूरा होता है ॥

बड़हरनगराधीशा राज्ञी श्रीवेदशरणकुअँरिः सा। शिवमन्दिरयुतभवने ऽतिष्ठिपद ऽस्याद्भुताम् मूर्त्तिम् ॥ ११७ ॥

अन्वयः—बडहरनगराधीशा राज्ञी सा श्रीवेदशरणकुअरिः। शिवमन्दिरयुत-

भवने अस्य अद्भुताम् मूर्त्तिम् अतिष्ठि-
पत् ॥ ११७ ॥

शब्दार्थ—वडहर नगर की स्वामिनी रानी उस श्री वेदशरण कुअंरि ने भी। शिवालय से युक्त मन्दिर में इन की अद्भुत मूर्त्ति का स्थापन किया ॥ ११७ ॥

भावार्थ—वडहर नगर की रानी उस वेदशरण कुअँरि ने भी शिवालय से युक्त मन्दिर में इन श्री स्वामी महाराज की मूर्त्ति को विधि से स्थापन करा कर नित्य पूजन कराती हैं ॥ ११७ ॥

एतस्य मूर्त्तिमवनीपवरोऽप्यऽ-
मेठीराजो विलासविपिने भवनं
विधाय । श्रीलालमाधवनृसिंह-
निरस्तशत्रु रस्थापयत् सविधि स-
म्यगऽपूपुजच्च ॥ ११८ ॥

अन्वयः—अवनीपवरः श्रीलालमाधवनृसिंहनिरस्तशत्रुः। अमेठीराजः अपि

विलासविपने भवनम् विधाय । एतस्य मूर्त्तिम् सविधि अस्थापयत् सम्यक् अपूपुजत् च ॥ ११८ ॥

शब्दार्थ—पृथिवी पतिओं में श्रेष्ठ श्री लाल माधवसिंह शत्रुजित । अमेठी के राजा ने भी विलास बाग़ में मन्दिर बनवाकर । (उस में) यतीन्द्र महाराज की मूर्त्ति को विधिवत् स्थापन कराया और भली भांति पूजा भी कराया ॥११८॥

भावार्थ—राजाओं में श्रेष्ठ शत्रु विजयी अमेठी के राजा श्रीलालमाधवसिंह बहादुर ने भी स्वामी महाराज के निवास बाग़ में सुन्दर मन्दिर बनवा कर स्वामी महाराज की मूर्त्ति को बड़ी विधि से स्थापन कराया और भली भांति पूजन भी कराते जाते हैं ॥ ११८ ॥

नागोधभूपरिवृढः स वदान्यवीरः श्रीयादवेन्द्रनृपतिः कविकैरवेन्दुः । तत् स्वामिनां चरणवा-

रिजसक्तचित्त स्तन्मूर्त्तिमात्मगृ-
हदैवतमाव्यधत्त ॥ ११९ ॥

अन्वयः—तत् स्वामिनाम् चरणवारि-
जसक्तचित्तः कविकैरवेन्दुः । वदान्यवीरः
सः नागोधभूपरिवृढः । श्री यादवेन्द्र-
नृपतिः तन्मूर्त्तिम् । आत्मगृहदेवतम् आ-
व्यधत्त ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—उक्त स्वामी जी के चरण कमल में
अनुरक्त चित्त, कुईं के पुष्प समान कविकुल के
लिये चन्द्र । वह दानवीर नागोध की पृथिवी
के प्रभु। श्रीयादवेन्द्र महाराज ने स्वामी महा-
राज की मूर्त्ति को अपने घर में गृह देवता रूप
स्थापन किया ॥ ११९ ॥

भावार्थ—यतीन्द्र जी के चरणारविन्द में भक्ति-
मान कुमुद समान कवि कुल के प्रकाशक चन्द्र
सदृश, दानवीर नागोध के राजा श्रीयादवेन्द्र महा-
राज ने श्री स्वामी महाराज की मूर्त्ति को अपने
घर में गृह देवता रूप स्थापन किया ॥ ११९ ॥

शूरो विज्ञः कुलीनः प्रभुरपि ध-
रणे यश्च चन्दापुरस्य प्रत्यब्दं
काशिकायां वितरति सदसि प्रा-
ज्ञवर्ये धनं यः । यो वा श्लाघ्यै
र्गुणौघै रतिजयति जगन्मोहनः
सोऽपि सिंह स्तत्पादाम्भोजयु-
ग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गं
बिभर्त्ति ॥ १२० ॥

अन्वयः—शूरः विज्ञः कुलीनः च। यः चन्दापुरस्य धरणेः प्रभुः अपि । यः काशिकायाम् प्रत्यब्दम् सदसि प्राज्ञवर्यैः धनम् वितरति। यः वा श्लाघ्यैः गुणौघैः अतिजयति । सः सिंहः जगन्मोहनः अपि। तत्पादाम्भोजयुग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गम् बिभर्त्ति ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—वीर, पण्डित, उत्तम कुल में उत्पन्न। चन्दापुर की पृथिवी के स्वामी और। जो काशी जी में हर साल सभा में पण्डितों को धन देते हैं। और जो उत्तम गुण समूह से अति शोभित हो रहे हैं। वह जगमोहन सिंह भी स्वामी जी के चरण कमलों के स्मरण सुख से पूर्ण रोमाञ्चित अङ्ग को धारण करते हैं॥ १२० ॥

भावार्थ—शूर, विज्ञ और कुलीन, चन्दापुर के राजा, जो काशी जी में हरसाल सभा कर के विद्वानों को धन दिया करते हैं वह उत्तम २ गुणों से अत्यन्त शोभमान अर्थात् सब से उत्तम जगमोहन सिंह जी भी उक्त स्वामी महाराज के चरणारविन्दों के स्मरण सुख में मग्न हो कर उत्तम गुणों से शोभित अङ्ग को धारण करते हैं ॥ १२० ॥

एव मस्य बहवो नरनाथाः पूजनाय भवनोपवनादौ। शास्त्रदृष्टविधिना प्रतिमां स्वे स्थापयन्ति बहुमानभृतः स्म ॥१२१॥

शूरो विज्ञः कुलीनः प्रभुरपि ध-
रणे यश्च चन्दापुरस्य प्रत्यब्दं
काशिकायां वितरति सदसि प्रा-
ज्ञवर्ये धनं यः । यो वा श्लाघ्यै
र्गुणौघै रतिजयति जगन्मोहनः
सोऽपि सिंह स्तत्पादाम्भोजयु-
ग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गं
बिभर्त्ति ॥ १२० ॥

अन्वयः—शूरः विज्ञः कुलीनः च। यः चन्दापुरस्य धरणेः प्रभुः अपि। यः काशिकायाम् प्रत्यब्दम् सदसि प्राज्ञवर्ये धनम् वितरति। यः वा श्लाघ्यैः गुणौघैः अतिजयति। सः सिंहः जगन्मोहनः अपि। तत्पादाम्भोजयुग्मस्मृतिसुखनिभृतोदञ्चिताङ्गम् बिभर्त्ति ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—वीर, पण्डित, उत्तम कुल में उत्पन्न। चन्दापुर की पृथिवी के स्वामी और। जो काशी जी में हर साल सभा में पण्डितों को धन देते हैं। और जो उत्तम गुण समूह से अति शोभित हो रहे हैं। वह जगमोहन सिंह भी स्वामी जी के चरण कमलों के स्मरण सुख से पूर्ण रोमाञ्चित अङ्ग को धारण करते हैं॥ १२०॥

भावार्थ—शूर, विज्ञ और कुलीन, चन्दापुर के राजा, जो काशी जी में हरसाल सभा कर के विद्वानों को धन दिया करते हैं वह उत्तम २ गुणों से अत्यन्त शोभमान अर्थात् सब से उत्तम जगमोहन सिंह जी भी उक्त स्वामी महाराज के चरणारविन्दों के स्मरण सुख में मग्न हो कर उत्तम गुणों से शोभित अङ्ग को धारण करते हैं॥ १२०॥

एव मस्य बहवो नरनाथाः पूजनाय भवनोपवनादौ। शास्त्रदृष्टविधिना प्रतिमां स्वे स्थापयन्ति बहुमानभृतः स्म॥१२१॥

अन्वयः—एवम् बहुमानभृतः बह्वः नरनाथाः । स्वे भवनोपवनादौ पूजनाय अस्य प्रतिमाम् । शास्त्रदृष्टविधिना स्थापयन्ति स्म ॥ १२१ ॥

शब्दार्थ—इसी प्रकार (यतीन्द्र जी का) बहुत मान करने वाले राजा लोगों ने । अपने घर और बगीचे में पूजन करने के लिये स्वामी जी की प्रतिमा को। शास्त्रोक्त विधि से स्थापन किया है ॥ १२१ ॥

भावार्थ—इसी प्रकार स्वामी जी के भक्त बहुत से राजा लोगों ने अपने अपने घरों में बागों में मन्दिर बनवा के नित्य पूजन और दर्शन के लिये उक्त स्वामी महाराज की मूर्त्ति को शास्त्रोक्त विधान से स्थापन किया है ॥ १२१ ॥

वाराणस्यां ब्रह्मनालान्तरालस्थायी श्रीमान् शीतलादिप्रसादः । तारुण्यास स्तत्तनूजो ऽप्यकस्मा-

त् प्रासादस्थो ऽत्यूर्द्ध्वतः काप्य ऽपतत् ॥ १२२ ॥

अन्वयः—वाराणस्याम् ब्रह्मनालान्तरालस्थायी । श्रीमान् शीतलादिप्रसादः । प्रासादस्थः तरुणयाप्तः तत्तनूजः क अपि । अकस्मात् अत्यूर्द्ध्वतः अपप्तत् ॥ १२२ ॥

शब्दार्थ—काशी जी में ब्रह्मनाल के पास रहने वाले । श्रीमान् शीतलाप्रसाद जी हैं । अटारी पर स्थित, युवा अवस्था को प्राप्त इन का पुत्र कधी। अकस्मात् बड़े ऊंचे से गिर पड़ा ॥१२२॥

भावार्थ—काशी में ब्रह्मनाल मुहल्ला के रहने वाले श्रीमान् शीतलाप्रसाद जी का, महल पर स्थित जवान लड़का कधी अचानक बड़े ऊंचे से गिर पड़ा ॥ और ॥ १२२ ॥

मूर्च्छां प्राप त्यक्तजीवनाशाः
सर्वे ऽभूवन् स्नेहिवर्गाः समन्तात् ।

तस्मिन् काले तत्पिता स्वामि-
सेवी तूर्णं गत्वा तं समाचष्ट स-
र्वम् ॥ १२३ ॥

अन्वयः—मूर्च्छाम् प्राप समन्तात् स्ने-
हिवर्गाः सर्वे । त्यक्ततज्जीवनाशाः अभू-
वन् । तस्मिन् काले स्वामिसेवी तत्पिता।
तूर्णम् गत्वा तम् सर्वम् समाचष्ट ॥१२३॥

शब्दार्थ—मूर्च्छा को प्राप्त होगया, वहां के सब
बन्धुओं ने । उस के जीने की आशा को त्याग
दिया था। उस समय स्वामी जी के सेवक उस
के पिता ने। जलदी जाकर स्वामी जी से सब
निवेदन किया ॥ १२३ ॥

भावार्थ—गिरते ही मूर्छित हो मृतक समान
पड़ाथा और आस पास के भाई बन्धु भी उस लड़के
के जीने की आशा को छोड़ बैठे थे। इतने में स्वामी
जी के पूर्ण भक्त उस लड़के के पिता ने शीघ्र स्वामी
जी के पास जाकर सब वृत्तान्त का निवेदन कर
दिया ॥ १२३ ॥

श्रुत्वा तेन व्याहृतं स्वामिवर्याः
साशीः प्रादुः पादनिर्णेजनं स्वम् ।
पित्रानीतस्यास्य पादोदकस्य पा-
नाद् बालो नष्टसर्वव्यथो ऽभूत् ॥

अन्वयः—तेन व्याहृतम् श्रुत्वा स्वामिवर्याः । स्वम् पादनिर्णेजनम् साशीः प्रादुः । पित्रानीतस्य अस्य पानाद् । बालः नष्टसर्वव्यथः अभूत् ॥ २२४ ॥

शब्दार्थ—उस के कहे हुए को सुन कर स्वामि श्रेष्ठ महाराज ने । अपना चरणामृत आशीर्वाद के साथ दिया । पिता से लाये गये उस चरणामृत के पीने से । बालक की सब व्यथा नष्ट होगई ॥ १२४ ॥

भावार्थ—उक्त सब वृत्तान्त को सुन कर दया युक्त स्वामियों में श्रेष्ठ महाराज ने अपना चरणामृत और आशीर्वाद दिया । पिता से लाये गये उस चरणामृत के पीते ही वह लड़का चैतन्य होगया । और उस की सब पीड़ा दूर हो गई ॥ १२४ ॥

तस्मिन् काले तत्पिता स्वामि-
सेवी तूर्णं गत्वा तं समाचष्ट स-
र्वम् ॥ १२३ ॥

अन्वयः—मूर्च्छाम् प्राप समन्तात् स्ने-
हिवर्गाः सर्वे । त्यक्ततज्जीवनाशाः अभू-
वन् । तस्मिन् काले स्वामिसेवी तत्पिता।
तूर्णम् गत्वा तम् सर्वम् समाचष्ट ॥१२३॥

शब्दार्थ—मूर्च्छा को प्राप्त होगया, वहां के सब
बन्धुओं ने । उस के जीने की आशा को त्याग
दिया था । उस समय स्वामी जी के सेवक उस
के पिता ने । जलदी जाकर स्वामी जी से सब
निवेदन किया ॥ १२३ ॥

भावार्थ—गिरते ही मूर्छित हो मृतक समान
पड़ाथा और आस पास के भाई बन्धु भी उस लड़के
के जीने की आशा को छोड़ बैठे थे। इतने में स्वामी
जी के पूर्ण भक्त उस लड़के के पिता ने शीघ्र स्वामी
जी के पास जाकर सब वृत्तान्त का निवेदन कर
दिया ॥ १२३ ॥

श्रुत्त्वा तेन व्याहृतं स्वामिवर्याः
साशीः प्रादुः पादनिर्णेजनं स्वम्।
पितानीतस्यास्य पादोदकस्य पा-
नाद् बालो नष्टसर्वव्यथोऽभूत् ॥

अन्वयः-तेन व्याहृतम् श्रुत्त्वा स्वामिवर्याः। स्वम् पादनिर्णेजनम् साशीः प्रादुः। पित्रानीतस्य अस्य पानाद्। बालः नष्टसर्वव्यथः अभूत् ॥ २२४ ॥

शब्दार्थ-उस के कहे हुए को सुन कर स्वामि श्रेष्ठ महाराज ने। अपना चरणामृत आशीर्वाद के साथ दिया। पिता से लाये गये उस चरणामृत के पीने से। बालक की सब व्यथा नष्ट होगई ॥ १२४ ॥

भावार्थ—उक्त सब वृत्तान्त को सुन कर दया युक्त स्वामियों में श्रेष्ठ महाराज ने अपना चरणामृत और आशीर्वाद दिया। पिता से लाये गये उस चरणामृत के पीते ही वह लड़का चैतन्य होगया। और उस की सब पीड़ा दूर हो गई ॥ १२४ ॥

सपुत्रशीतलाप्रसाद प्राड्विवाक-
जीवनं ददौ यतिःस्वतेजसा ऽस्त्य-
तोऽधिकं किमद्भुतम्। बहून्य-
मूदृशानि दुष्कराणि मानवा भु-
वि यते र्महाद्भुतानि सिद्धिदानि
वर्णन्त्यहो ॥ १२५ ॥

अन्वयः—यतिः स्वतेजसा सपुत्रशी-
तलाप्रसाद प्राड्विवाकजीवनम् ददौ।
अतः अधिकम् किम् अद्भुतम् अस्ति।
अहो मानवाः भुवि यतेः अमूदृशानि
दुष्कराणि। बहूनि सिद्धिदानि महाद्भु-
तानि वर्णयन्ति ॥ १२५ ॥

शब्दार्थ—यतीन्द्र जी ने अपने तेज से पुत्र-
सहित शीतलाप्रसाद तहसीलदार को जीवदान
दिया। इस से अधिक और क्या आश्चर्य है।

अहो मनुष्य लोग पृथिवी पर यतीन्द्र जी के इस प्रकार के दुष्कर । बहुत से सिद्धि के देने वाले महा अद्भुत चरित्र को वर्णन करते हैं ॥ १२५॥

भावार्थ—श्री यतीन्द्र जी बड़े प्रभाव वाले हैं जिन्हों ने पुत्र सहित शीतलाप्रसाद जी को जीव दान दिया इस से बढ़कर और अद्भुत बात कौन होगी । इस प्रकार के अति कठिन बहुत से सिद्धि के देने वाले बड़े अद्भुत महाराज के चरित्र को संसार में मनुष्य लोग वर्णन करते हैं॥ यहां ग्रन्थ के बढ़ जाने की डर से संक्षेप से वर्णन किया गया है ॥१२५॥

तात श्चास्य पवित्रचारुचरितः काश्यां शिवत्त्वं गतः पत्नी तस्य तपोमयी भगवती ज्योति स्तदीयं श्रिता । माता चास्य हिमालये वदरिकाक्षेत्रे तपोरूपिणी ध्यायन्ती परमेश्वरं मधुरिपुं वैकुण्ठलोकं गता ॥ १२६ ॥

अन्वयः—पवित्रचारुचरितः अस्य तातः च काश्याम् शिवत्त्वम् गतः। तपोमयी भगवती तस्य पत्नी काश्याम् तदीयम् ज्योतिः श्रिता। च अस्य माता हिमालये बदरिकाक्षेत्रे तपोरूपिणी। मधुरिपुम् परमेश्वरम् ध्यायन्ती वैकुण्ठलोकम् गता॥ १२६॥

शब्दार्थ—पवित्र सुन्दर चरित्र वाले स्वामी जी के पिता काशी जी में शिव स्वरूप हो गये। तपःस्वरूप भगवती स्वामी जी की स्त्री ने काशी जी में इन के तेज का आश्रयण किया। और स्वामी जी की माता हिमाचल पर्वत पर बदरीनाथ जी में तपःस्वरूप हो। मधु दैत्य के मारने वाले परमेश्वर का ध्यान करती हुई वैकुण्ठलोक को पधारी॥ १२६॥

भावार्थ—स्वामी जी के पवित्र सुन्दर चरित्र वाले पित्ता जी ने काशी जी में शरीर त्याग शिव के स्वरूप का धारण किया। तपःस्वरूप भगवती स्वामी जी

की पत्नी ने भी काशी जी में देह को छोड़ कर स्वामी जी के तेज का आसरा लिया। और स्वामी जी की माता हिमालय पहाड़ पर बदरीनाथ जी में तपःस्वरूप हो मधुदैत्य के मारने वाले भगवान का ध्यान करती हुई वैकुण्ठलोक को पधार गयी ॥१२६॥

वर्षे षट्युगनन्दभूपरिमिते मार्गे गुरौ वासरे शुक्ले सूर्यतिथावनेन विदुषा योगीन्द्रवर्येण सः। स-म्प्राप्या ऽथ सुदुर्लभां बुधवरः सं-न्यासदीक्षां शुभां काश्यां मैथि-लभूसुरो विजयते श्रीचीचनाख्यः सुवित ॥ १२७ ॥

अन्वयः—षट्युगनन्दभूपरिमिते वर्षे मार्गे शुक्ले सूर्यतिथौ गुरौ वासरे। अ-नेन विदुषा योगीन्द्रवर्येण। सुदुर्लभाम् संन्यासदीक्षाम् संप्राप्य। अथ बुधवरः

सुवित् मैथिलभूसुरः । सः श्रीचीचनाख्यः काश्यास् विजयते ॥ १२७ ॥

शब्दार्थ—छ, चार, नौ और एक से गिने गये अर्थात् १९४६ वें साल में अगहन शुक्ल सप्तमी वृहस्पति के दिन। इस विद्वान् योगीन्द्र श्रेष्ठ से । अति दुर्लभ शुभ संन्यास दीक्षा को प्राप्त होकर । पण्डितों में श्रेष्ठ विद्वान् मैथिल ब्राह्मण । वह श्रीचीचन नाम के काशी जी में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १२७ ॥

भावार्थ—संवत् १९४६ अगहन शुक्ल सप्तमी गुरुवार के दिन उक्त विद्वान् योगीन्द्रों में श्रेष्ठ से अतिदुर्लभ संन्यास दीक्षा को प्राप्त होकर पण्डितों में श्रेष्ठ विद्वान् वह मैथिल ब्राह्मण श्री चीचन जी महाराज काशी जी में सुशोभित हो रहे हैं ॥१२७॥

बिभ्रत्तीर्थगणेश्वरे निवसतिं कायस्थवंशोद्भवो मोजफ्फरपुरपत्तनाङ्कविलसद् ग्रामावलीशालिनः । स्वामी नाह्नपुरस्य रायप-

दयुग् रुद्रप्रसादाभिध स्तीर्थाना-
मटनेन शुद्धहृदयो मुक्तो ऽविमु-
क्ते ऽभवत् ॥ १२८ ॥

अन्वयः-तीर्थगणेश्वरे निवसतिम् बिभ्रत् । कायस्थ वंशोद्भवः । मोजफ्फरपुरपत्तनाङ्कविलसद् ग्रामावलीशालिनः । नाह्लपुरस्य स्वामी रायपदयुक् । रुद्रप्रसादाभिधः तीर्थानामटनेन शुद्धहृदयः। अविमुक्ते मुक्तः अभवत् ॥१२८॥

शब्दार्थ—तीर्थों के राजा जो प्रयागराज वहां के निवासी। कायस्थ कुल में उत्पन्न। मुजफ्फर पुर ज़िला में शोभायमान ग्राम समूह सहित। नाह्लपुर के स्वामी और राय पदवी से सुशोभित। श्रीरुद्रप्रसाद जी ने तीर्थों की यात्रा से शुद्ध हृदय होकर इस काशी जी में मुक्ति को पाया ॥ १२८ ॥

भावार्थ—तीर्थराज श्रीप्रयाग के रहने वाले, कायस्थ कुल में उत्पन्न, मुजफ्फरपुर ज़िला में शोभायमान ग्राम समूह सहित नाहूपुर परगने के स्वामी, राय पदवी से युक्त, श्री चौधरी रुद्रप्रसाद जी ने तीर्थों की यात्रा करने से शुद्ध हृदय होकर श्री काशी जी में मुक्ति को पाया ॥ १२८ ॥

तदात्मजः सद्गुणशीलशाली श्री-मान् महादेवप्रसाद नामा। अपा-रसंसारमिमम् तरीतुम् न्यबन्ध-यत् पुण्यचरित्रमेतद् ॥ १२९ ॥

अन्वयः—तदात्मजः सद्गुणशीलशा-ली । श्रीमान् महादेवप्रसादनामा । इदम् अपारसंसारम् तरीतुम् । एतत् पुण्यचरित्रम् न्यबन्धयत् ॥ १२९ ॥

शब्दार्थ— उन के पुत्र उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव से सुशोभित । श्रीयुत् महादेव प्रसाद जी ने । इस अपार संसार के पार करने के लिये । इस पुण्य चरित्र को बनवाया ॥ १२९ ॥

भावार्थ—उक्त चौधरी जी के पुत्र, उत्तम गुण और उत्तम स्वभाव से सुशोभित, श्रीमान् श्रीमहादेव प्रसाद चौधरी जी ने अपरम्पार संसार की नौकारूप अर्थात् संसार से उद्धार करने वाले इस श्री स्वामी जी के पुण्य चरित्र का संग्रह करवाया ॥ १२९ ॥

पूर्णा चान्द्री कला वा दिशि दिशि लहरी क्षीरसिन्धूत्थिता वा कुन्दालीमालिका वा शिवनिलयगिरेः कान्तिरेवोद्गता वा। हंसीनां संहति वैंत्यवनितलवुधै स्तर्क्यते यस्य कीर्तिः सोयं लक्ष्मीश्वराख्यः जगति विजयते नायकस्तीरभुक्तेः ॥ १३० ॥

अन्वयः—अवनितलवुधैः यस्य कीर्त्तिः। पूर्णा चान्द्री कला वा। दिशि दिशि क्षीरसिन्धूत्थिता लहरी वा। कुन्दाली

मालिका वा। शिवनिलयगिरेः कान्तिः एव उद्गता वा। हंसीनाम् संहतिः वा इति तर्क्यते। सः अयम् तीरभुक्तेः नायकः लक्ष्मीश्वराख्यः जगति विजयते॥

शब्दार्थ—पृथिवी में पण्डितों से जिस की कीर्त्ति। यह पूर्ण चन्द्रमा की कला है। अथवा सब दिशाओं में क्षीर समुद्र से उठी लहर है। वा कुन्द पुष्पों के पङ्क्तियों की माला है। अथवा महादेव जी के निवास कैलाश पर्वत की चमक है। वा हंसियों की पङ्क्ति है इस प्रकार तर्कना की जाती है। वह तीरभुक्ति के स्वामी लक्ष्मीश्वर नाम से जगत में अतिशोभायमान हो रहे हैं॥ १३०॥

भावार्थ—संसार के सब पण्डित लोग जिस की कीर्त्ति को क्या यह पूर्ण चन्द्रमा की कला है अथवा क्षीर सागर से सब ओर लहर उठ रही है वा कुन्द के पुष्पों की पङ्क्ति है वा (मल्लिका है) चमेली है अथवा कैलाश पर्वत की चमक दीखती है वा हंसियों की पङ्क्ति है इस प्रकार तर्कना करते हैं ऐसी कीर्त्ति

से विभूषित मिथिला के स्वामी श्री लक्ष्मीश्वर सिंह बहादुर जी जगत में अत्यन्त शोभायमान हो रहे हैं॥

राजत्तत्पाणिमन्दारच्छायासत् सङ्गशीतलः। साम्बशम्भोः पदाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः॥३१॥

चरितमिदमुदारं सच्चिदानन्दमूर्त्तौ र्यमिन इति पवित्रं मानसे संविचिन्त्य। अकृत शिवकुमारस्तन्निबन्धं स्वपित्रो श्चरणकमलपुण्यध्यानलब्धावलम्बः॥१३२॥

इति श्री परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्री १०८ भास्करानन्द स्वामिनःजीवनचरितं श्री पण्डितवर शिवकुमार शास्त्रिविरचितं समाप्तम्॥

अन्वयः—राजत् तत्पाणिमन्दारच्छायासत्सङ्गशीतलः। साम्बशम्भोः पदाम्भोजमकरन्दमधुव्रतः। स्वपित्रोः चरणकमलपुण्यध्यानलब्धावलम्बः। शिव-

कुमारः सच्चिदानन्दमूर्त्तेः यमिनः। इदम् उदारम् चरितम् पवित्रम् इति मानसे संविचिन्त्य। तन्निबन्धम् अकृत॥१३२॥

शब्दार्थ—स्वर्गवृक्ष रूपी उन के सुन्दर हस्त की छाया के सत्संग से शान्त चित्त, । और साम्वशिव के चरण कमल का जो मकरन्द उस के भ्रमर रूप। और अपने माता पिता के चरण कमल का जो पुण्य ध्यान उसके आश्रित। श्री शिवकुमार जी ने सच्चिदानन्द मूर्त्ति श्री यतीन्द्र जी के। इस उदार चरित्र को पवित्र है यह विचार कर इस की रचना किया॥ १३२॥

भावार्थ—मिथिलेश्वर राजा के स्वर्गवृक्ष रूपी सुन्दर हस्त की छाया के सत्संग से निश्चिन्त चित्त और साम्बशिव के चरण कमल के परम भक्त और माता पिता के चरण कमलों का जो पुण्य ध्यान उसी का भरोसा करने वाले श्रीशिवकुमार मिश्र जी ने सच्चिदानन्द स्वरूप श्री १०८ भास्करानन्द जी के इस उत्तम चरित्र को पवित्र करने वाला है यह विचार कर इस की रचना को किया॥ १३२॥

इति श्री मालवीय चतुर्वेद पण्डित जयगोविन्द कृतं सान्वयं भाषाविवरणं समाप्तम्॥

श्रीयतीन्द्रगुरुस्तोत्रम्

दशशतदलपद्मे पूर्णचन्द्रप्रभाभम्
मुदितवदननेत्रं गन्धपुष्पाम्बरा-
ढ्यम् । अभयवरकराब्जं हंसगं के
स्मरामि गुरुममरशरीरं भास्क-
रानन्दमीशम् ॥ १ ॥

अन्वयः—के दशशतदलपद्मे हंसगम् पूर्णचन्द्रप्रभाभम् । मुदितवदननेत्रम् गन्धपुष्पाम्बराढ्यम् । अभयवरकराब्जम् अमरशरीरम् । ईशम् भास्करानन्दम् गुरुम् स्मरामि ॥ १ ॥

शब्दार्थ— मस्तक में सहस्रदल कमल के बीच हंस पीठ पर पूर्णचन्द्रमा के समान कान्तियुक्त।

प्रसन्न मुख, प्रसन्ननेत्र, सुगन्धित पुष्प और वस्त्र से युक्त । अभयमुद्रा वरमुद्रा संयुक्त है हस्त जिनका ऐसे देव शरीर। स्वामी भास्करानन्द गुरु जी का स्मरण करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—योगी जन अपने मस्तक में सहस्त्रदल कमल का ध्यान करते हैं उस कमल के बीच में हंसासन से स्थित, पूर्णचन्द्रमा समान प्रकाशमान, प्रसन्न मुख, प्रसन्न नेत्र, सुगन्धित पुष्प और वस्त्र को धारण किये हुए, अभय और वरमुद्रा युक्त अपने कर कमलों से सेवकों के मनोरथ देने वाले देव शरीर स्वामी श्री १०८ भास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी का ध्यान करता हूं ॥ १ ॥

साक्षाद्धराकारयुतं सशान्तिं सद्योगसिंहासनराजमानम् । मोक्षार्थसिद्ध्यर्थमहं स्वमूर्द्ध्नि श्रीभास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ २ ॥

अन्वयः—अहम् मोक्षार्थसिद्ध्यर्थम् साक्षाद्धराकारयुतम् । सशान्तिम् सद्यो-

गसिंहासनराजमानम् । श्रीभास्करानन्दगुरुम् स्वमूर्द्ध्ना नमामि ॥ २ ॥

शब्दार्थ—मैं मोक्ष रूपी प्रयोजन सिद्ध हो इस लिये साक्षात् पृथिवी सम्बन्धी आकार को धारण किये हुए। शान्ति सहित और सुन्दर योगसिंहासन पर विराजमान। श्री भास्करानन्द गुरु जी को अपने शिर से प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—संसार का आवा गमन छूट जाय इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये शिव की आठ मूर्त्तियों में से पृथिवी सम्बन्धी मूर्त्ति के धारण किये हुए प्रत्यक्ष शिव स्वरूप शान्ति युक्त और अच्छे योग सिंहासन पर विराजमान श्री भास्करानन्द गुरु महाराज को मैं शिर से प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

सदानन्ददेहं परानन्दकन्दं यतिं भास्करानन्दमीशं प्रसन्नम्। भवेद् यस्य सान्निध्यमात्रेण जन्तु श्चिदानन्दरूपो गुरुं तं नमामि॥

अन्वयः—जन्तुः यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दरूपः भवेत् । तम् आनन्द देहम् परानन्दकन्दम्। प्रसन्नम् यतिम् ईशम् भास्करानन्दम् सदा नमामि॥३॥

शब्दार्थ—जीवधारी जिन के पास रहने से ही चिदानन्द स्वरूप हो जाता है। उस सदानन्द शरीर परमानन्द समूह। प्रसन्न यती स्वामी श्री भास्करानन्द जी को प्रणाम करता हूं॥ ३॥

भावार्थ—प्राणी जिन के पास रहने ही से कुछ काल में चिदानन्द स्वरूप हो जाता है अर्थात् संसार के दुःख से छूट आनन्दस्वरूप होजाता है उस परब्रह्मस्वरूप और उत्तम आनन्दों के मूल अर्थात् जिन की कृपा से सब आनन्द उत्पन्न होते हैं उस प्रसन्न यती स्वामी श्री भास्करानन्द महाराज को मैं सदा नमस्कार करता हूं॥ ३॥

चराचरं व्याप्तमपीह येन अखण्डविम्वाभमहर्निशन् तम् । सन्दर्शितं तत् पदमऽत्र येन श्री

भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥४॥

अन्वयः—इह येन चराचरम् अपि व्याप्तम् । येन अत्र अखण्डविम्बाभम् तत् पदम् सन्दर्शितम् । तम् श्रीभास्करानन्दगुरुम् (अहम्) अहर्निशम् नमामि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—इस संसार में जिसने चर और अचर को भी व्याप लिया है। और जिसने यहां अखण्ड बिम्ब स्वरूप ब्रह्मपद दिखाय दिया है। उस श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—इस संसार में जितने चल और अचल पदार्थ हैं सब के बाहर भीतर जो व्याप्त हो रहे हैं और जिन से यहां परिपूर्ण बिम्बस्वरूप ब्रह्मपद का दर्शन होता है। उन श्री भास्करानन्द गुरु महाराज को मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥

अबोधरूपात् तमसोऽन्धभावं

गतस्य बोधाञ्जनसत्पृषत्या। उन्मीलनं चक्षुरुपैति येन तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ५ ॥

अन्वयः–अबोधरूपात् तमसः अन्धभावम् गतस्य चक्षुः। बोधाञ्जनसत्पृषत्या येन उन्मीलनम् उपैति। तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ–अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हुओं का नेत्र। ज्ञानरूपी अञ्जन के उत्तम विन्दु स्वरूप जिस (यतीन्द्र जी) से खुल जाता है। उस भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥

भावार्थ—अज्ञान रूपी अन्धकार से मनुष्यों की अन्धी आखें ज्ञान स्वरूप अञ्जन के उत्तम विन्दुस्वरूप जिस स्वामी जी महाराज की कृपा से देखने में समर्थ होतीं हैं अर्थात् जिस महात्मा की कृपासे मनुष्यों के हृदय में सत् और असत् का विवेक उत्पन्न होता है ऐसे श्री भास्करानन्द जी गुरु महाराज को मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

गुरु विंधाता गुरुरेव विष्णु गुरुश्च साक्षान्मकरध्वजारिः । गुरुस्तथैतत् सकलं जगद् यस्तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ६ ॥

अन्वयः—गुरुः विधाता गुरुः एव विष्णुः । गुरुः च साक्षात् मकरध्वजारिः । तथा यः गुरुः एतत् सकलम् जगत् । तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—गुरु ब्रह्मा हैं गुरु ही विष्णु हैं । और गुरु साक्षात् कामदेव के शत्रु हैं। इसी प्रकार जो गुरु इस सम्पूर्ण संसार स्वरूप हैं। उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥६॥

भावार्थ—गुरु ब्रह्मा हैं गुरु ही विष्णु भगवान हैं और गुरु ही साक्षात् शिव जी हैं इसी प्रकार जो गुरु जी ही सम्पूर्ण संसार हैं अर्थात् सर्वस्व हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ६ ॥

विद्याप्रचारार्थमनेकरूपिणे गुरु-स्वरूपाय शिवाय सन्ततम् । गुरो हि तुभ्यं भगवन् नमः प्रभो श्री-भास्करानन्द दिगम्बराय ते ॥७॥

अन्वयः—गुरो भगवन् प्रभो श्रीभास्करानन्द !। विद्याप्रचारार्थम् अनेक रूपिणे गुरुस्वरूपाय तुभ्यम् । शिवाय दिगम्बराय ते सन्ततम् नमः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—हे गुरो हे भगवन् हे प्रभो हे श्री भास्करानन्द जी महाराज !। विद्या के प्रचार के लिये अनेक रूपधारण करने वाले गुरुस्वरूप आप को। और शिव स्वरूप दिगम्बर आप को सदा नमस्कार है ॥ ७ ॥

भावार्थ—हे गुरो हे भगवन् हे प्रभो हे श्रीभास्करानन्द जी महाराज ! आपने ब्रह्मविद्या के प्रचार के लिये अनेक रूप का धारण किया है अर्थात् कभी शिष्य का रूप और कभी गुरु का रूप धारण किया

है ऐसे कृपालु गुरुस्वरूप आप को और शिवरूप दिगम्बर आप को सदा नमस्कार है ॥ ७ ॥

नमोस्तु नव्याकृतये नवाय च
परार्थरूपाय च चिद्घनायते ।
समस्तजाड्यान्धविभेदभानवे श्री
भास्करानन्दगुरुस्वरूपिणे ॥ ८ ॥

अन्वयः—नव्याकृतये नवाय च । परार्थरूपाय चिद्घनाय च । समस्तजाड्यान्धविभेदभानवे । श्री भास्करानन्द गुरुस्वरूपिणे ते नमः अस्तु ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जिन की आकृति नवीन है और नव हैं । दूसरों के उपकार के लिये जिन्हों ने स्वरूप धारण किया है और स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं । और जो सब अज्ञान रूपी अन्धकार के नाश करने के लिये सूर्यनारायण हैं । ऐसे श्री भास्करानन्द गुरुस्वरूप को नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिनका रूप नवीन है और जो नवीन वस्तु के कारण हैं अर्थात् जिनकी कृपा से नवीन वस्तु होती है और जिन्हों ने परोपकार के लिये रूप धारण किया है और ज्ञानस्वरूप हैं और अज्ञान रूपी अन्धकार के नाश करने के लिये सहस्र किरण सूर्यनारायण हैं ऐसे श्री भास्करानन्द गुरु स्वरूप आप को नमस्कार है ॥ ८ ॥

स्वभक्ततन्त्राय स्वतन्त्ररूपिणे सदा दयाक्लृप्तशरीरधारिणे । भव्यात्मनां भव्यस्वरूपिणे तथा श्री भास्करानन्द परात्मने नमः ॥९॥

अन्वयः—स्वभक्ततन्त्राय स्वतन्त्ररूपिणे। सदा दयाक्लृप्तशरीरधारिणे। तथा भव्यात्मनाम् भव्यस्वरूपिणे। श्री भास्करानन्दपरात्मने नमः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—जो अपने भक्तों के आधीन हैं और स्वाधीन रूप हैं। सदा दया युक्त शरीर को

धारण किये हैं। इसी प्रकार कल्याण वालों के भी कल्याण स्वरूप हैं। ऐसे श्री भास्करानन्द परब्रह्म को नमस्कार है ॥ ९ ॥

भावार्थ—अपने भक्तों के अधीन हैं अर्थात् भक्त लोगों के मनोरथ को पूर्ण करते हैं और स्वतन्त्र हैं अर्थात् अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। सदा दयावान् शरीर को धारण किये हैं। इसी प्रकार जो कल्याण चाहने वालों के लिये कल्याण रूप हैं ऐसे श्री भास्करानन्द परब्रह्म को नमस्कार है ॥ ९ ॥

सदा ज्ञानिनां ज्ञानरूपो हि यश्च प्रकाशस्वरूपस्तथा भास्वतां वै। विमर्शात्मनां यो विमर्शस्वरूपो गुरुं तं यतिं भास्करानन्दमीड़े ॥ १० ॥

अन्वयः—यः च हि ज्ञानिनाम् ज्ञानस्वरूपः। तथा भास्वताम् प्रकाशस्वरूपः वै। यः विमर्शात्मनाम् विमर्शस्व

रूपः। तम् गुरुम् यतिम् भास्करानन्दम् सदा ईड़े ॥ १० ॥

शब्दार्थ– जो ज्ञानियों के ज्ञान स्वरूप हैं। इसी प्रकार प्रकाश वालों के प्रकाश स्वरूप हैं। जो विचार वालों के विचार स्वरूप हैं। उन गुरु यति श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ—जो ज्ञानियों के ज्ञान स्वरूप हैं और प्रकाश वालें के प्रकाशस्वरूप अर्थात् प्रकाशक हैं और विचार करने वालें के विचार हैं ऐसे गुरु यति श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

पुरस्तात् तथा पार्श्वयोः पृष्ठदेशं
तथोर्द्धाध एवं सदा तं नमामि ।
स सच्चित् स्वरूपः शिवं सन्द-
धातु गुरु र्भास्करानन्दरूपः प्र-
सन्नः ॥ ११ ॥

अन्वयः–पुरस्तात् तथा पार्श्वयोः

(सहितं) पृष्ठदेशम् । तथा ऊर्द्ध्वाधः एवं सदा तम् नमामि । सत् चित् स्वरूपः भास्करानन्दरूपः सः गुरुः । प्रसन्नः (भूत्वा) शिवम् सन्दधातु ॥ ११ ॥

शब्दार्थ-(उस महात्मा के) अग्र भाग को वैसे दोनो पार्श्व को उसके सहित पीछे के भाग को और ऊपर नीचे के भाग को इस प्रकार उन को सदा प्रणाम करता हूं । सत् चित् स्वरूप श्रीभास्करानन्द स्वरूप वह गुरु प्रसन्न (हो कर) कल्याण करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—सर्व शक्तिमान उक्त महात्मा के अग्र भाग को वैसे दोनो पार्श्व भाग को पीछे के भाग को ऊपर नीचे के भाग को अर्थात् महाराज के सब उत्तम अङ्गों को सदा प्रणाम करता हूं वह सत् चित् स्वरूप श्रीभास्करानन्द गुरु महाराज प्रसन्न होकर कल्याण करें ॥ ११ ॥

अखण्डबोधरूपाय आनन्दवन चारिणे । नमः परमहंसाय भा-स्करानन्दमूर्त्तये ॥ १२ ॥

अन्वयः—अखण्डबोधरूपाय। आनन्दवनचारिणे परमहंसाय। भास्करानन्दमूर्त्तये नमः॥ १२॥

शब्दार्थ—परिपूर्ण ज्ञान स्वरूप। आनन्द वन में विचरने वाले परमहंस। श्री भास्करानन्द मूर्ति को नमस्कार है॥ १२॥

भावार्थ—परिपूर्ण ज्ञान रूप अर्थात् जिन को ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान पूर्ण रूप से प्राप्त हुआ है और आनन्द वन में विचर रहे हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द में मग्न हैं वा आनन्द बाग में रहते भी हैं ऐसे परमहंस श्री भास्करानन्द जी को नमस्कार करता हूं॥ १२॥

अपारसंसारमिमं तरीतुं संप्रार्थये बद्धकरः सदा ऽहम्। श्री भास्करानन्दयतीन्द्र मत्र गुरुं महादेवप्रसाददासः॥ १३॥

अन्वयः—अहम् महादेवप्रसाद दासः अत्र सदा बद्धकरः। इमम् अपारसं-

सारम् तरीतुम् । श्रीभास्करानन्द यतीन्द्रम् गुरुम् संप्रार्थये ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—मैं महादेवप्रसाद दास यहां सदा अञ्जलि बांधकर। इस अपार संसार के तरने के लिये। श्रीभास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी की अच्छे प्रकार से प्रार्थना करता हूं ॥ १३ ॥

भावार्थ—मैं महादेवप्रसाद गुरु का दास सदा हाथ जोड़ कर इस अपार संसार के पार जाने के लिये श्रीभास्करानन्द जी यतीन्द्र गुरु जी की भलीभांति प्रार्थना करता हूं ॥ १३ ॥

प्रसादार्थं यत्नात् तव नुतिरियं यद्यपि कृता विचारेऽद्य व्यर्था पृथुरपि विभातीश मम तु । गुणो यस्मिन् यादृक् कथयति जनश्चेत् तदधिकं प्रसादः स्यात् तस्मिन्निह तु नहि तस्याऽस्त्यवसरः ॥ १४ ॥

अन्वयः—हे ईश ! यद्यपि तव प्रसादार्थम् यत्नात् इयम् नुतिः कृता। पृथुः अपि (इयम्) अद्य मम विचारे तु व्यर्था विभाति । (यतः) यस्मिन् यादृक् गुणः स्यात् जनः तदधिकम् कथयति चेत् तस्मिन् प्रसादः। इह तु तस्य अवसरः न अस्ति ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—हे स्वामिन् ! यद्यपि आप की प्रसन्नता के लिये बड़े यत्न से यह स्तुति की गई है। वड़ी भी (यह) आज मेरे विचार में व्यर्थ मालूम पड़ती है। (क्योंकि) जिस में जितना गुण होवे मनुष्य उस से अधिक कहे तो उस पर वह प्रसन्न होता है। यहां तो उस का अवसर ही नहीं है ॥ १४ ॥

भावार्थ—हे स्वामी जी महाराज ! यद्यपि आप को प्रसन्न करने के लिये बड़े परिश्रम से यह स्तुति की गई है यह वड़ी भी है पर विचारते हैं तो यह शंका होती है कि यह स्तुति वृथा सी है। क्योंकि जिस

में जितना गुण होवे उस से अधिक गुण जो उस का वर्णन किया जाय तो वह प्रसन्न होता है परन्तु आप के गुण तो अनन्त है इस से यह स्तुति आप के गुण समुद्र के एक विन्दु के समान भी नहीं हो सकती तो अधिक वर्णन कैसे हो सकेगा अर्थात् नहीं ॥ १४ ॥

अतो यच्चाञ्चल्यात् तव गुणगणानां हि विभवम ऽबुध्वैतत् यत्नात् कृतमिह मया तत्करणतः। सुबध्या ऽहं पाणी कृतनतशिरः प्रार्थय इति यतीश क्षन्तव्यं वितर मयि दृष्टिं सकरुणाम् ॥ १५ ॥

अन्वयः—अतः हे यतीश ! तव गुणगणानाम् विभवम् अबुध्वैव। चाञ्चल्यात् मया इह यत् तत्करणतः कृतम्। तत् क्षन्तव्यम् मयि सकरुणाम् दृष्टिम् वितर। इति अहम् पाणी सुबध्य कृतनतशिरः प्रार्थये ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—इस कारण हे यतीन्द्र जी आप के गुण गणों के ऐश्वर्य को विना जाने ही। चञ्चलता से यहां मैं ने जो आप के प्रसन्न होने के लिये (स्तुति) किया है। उसे क्षमा कीजिये मुझ पर दया युक्त दृष्टि कीजिये। यह मैं हाथ जोड़ कर शिर झुकाकर प्रार्थना करता हूं॥ १५॥

भावार्थ—इस से हे यतीन्द्र जी महाराज! आप के गुणों के ऐश्वर्य्य को विना जाने मैं ने चञ्चलता से आप को प्रसन्न करने के लिये जो स्तुति की है उसे यह भोला भक्त है यह जान क्षमा कीजिये मुझ पर दया दृष्टि कीजिये यह मैं हाथ जोड़ कर शिर झुका कर प्रार्थना करता हूं॥ १५॥

सदा स्वे पादाब्जे मम कुरु रतिं पावनतमे प्रसाद स्ते यस्मात् त-दुपदिश मां त्वं करुणया। न जाने ऽहं किञ्चित् चरणरजसस्ते समधिकम् प्रसीद त्वं तस्माच्छ-रणद! न चान्यच्च शरणम्॥१६॥

अन्वयः—पावनतमे स्वे पादाब्जे सदा मम रतिम् कुरु। यस्मात् ते प्रसादः तत् त्वं करुणया माम् उपदिश। अहम् ते चरणरजसः समधिकम् किञ्चित् न जाने। हे शरणद! अन्यत् शरणम् च न। तस्मात् त्वम् प्रसीद॥ १६॥

शब्दार्थ—अति पुनीत अपने चरण कमल में सदा मेरी प्रीति हो सो करो। जिस से आप की प्रसन्नता हो उसे आप कृपा करके उपदेश कीजिये। हम आप के चरण रज से अधिक कुछ नहीं जानते। और हे रक्षक! और कोई रक्षा करने वाला नहीं है। इस से आप प्रसन्न होइये॥१६॥

भावार्थ—ऐसी कृपा कीजिये जिस से अतिपुनीत आप के चरण कमलों में मेरी प्रीति सदा अधिक होती जाय। और जिस से आप प्रसन्न होते हों उसे उपदेश कीजिये। क्योंकि मैं आप के चरण रज से अधिक और कुछ नहीं जानता और हे जगत् के रक्षा करने वाले! आप की शरण के सेवाय और कोई शरण नहीं है इससे आप प्रसन्न होइये॥ १६॥

इति श्री महादेवप्रसाद चतुर्धुरीण कृतं यतीन्द्र स्तोत्रम्

यतीन्द्रस्तोत्रम्.

श्रीगणेशाय नमः॥ज्ञात्वा वेदार्थसंघं मुनिवररचितं प्राप्तबोधः स विज्ञः मत्वा चालीकमेतत् सकलमिह जगद् योगमार्गैकलग्नः। ध्यायन् तं देवमाद्यं भवभयहरणं भास्करानन्दविद् यः दुर्गायाः पूर्वभागे विलसति विपिने काशिकायां यतीन्द्रः॥ १॥

अन्वयः—यः मुनिवररचितम् वेदार्थसंघम् ज्ञात्त्वा प्राप्तबोधः विज्ञः। भास्करानन्दविद् सः यतीन्द्रः इह एतत् सक-

लम् जगत् अलीकम् मत्त्वा। योग मार्गैकलग्नः भवभयहरणाम् तम् आद्यम् देवम् ध्यायन् । काशिकायाम् दुर्गायाः पूर्वभागे विपिने बिलसति ॥ १ ॥

शब्दार्थ—जो मुनिश्रेष्ठ से रचेगये वेदार्थ समूह को जानकर प्राप्त हुआ है बोध जिस को ऐसे विवेकी। वह यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी विद्वान् यहां इस सब संसार को मिथ्या मान । केवल योग मार्ग में लगकर संसार भय के दूर करने वाले उस आदि देव का ध्यान करते हुए काशी में दुर्गाकुण्ड के पूर्व आनन्द बाग़ में शोभित हो रहे हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—मुनियों मे श्रेष्ठ व्यास जी के रचित वेदार्थ समूह अर्थात् वेदान्त के जानकर उस के विचार से ज्ञानवान् हो विवेकी वह यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी महाराज विद्वान् यहां इस सब संसार के मिथ्यामान केवल योग में लगकर संसार भय के अर्थात् माया जाल के दूर करने वाले उस आदि परमेश्वर का ध्यान करते हुए काशी में दुर्गाकुण्ड के पूर्व आनन्द बाग़ में सुशोभित हो रहे हैं ॥ १ ॥

त्यक्त्वा स्त्रीपुत्रवर्गं सकलगुण-
युतं मोहरूपं विशालं पुण्यक्षेत्रा-
ण्य ऽशेषाण्य ऽखिलभुवि गता-
न्याऽऽप्तकामो ददर्श। स्मृत्वा यो
देवदेवं निगमफलमयं भास्करा-
नन्दयोगी, काश्यामानन्दकुञ्जे
निवसति विपिने सो ऽयमानन्द-
कन्दः ॥ २ ॥

अन्वयः—यः सकलगुणयुतम् विशालम्
मोहरूपम् स्त्रीपुत्रवर्गम् त्यक्त्वा। नि-
गमफलमयम् देवदेवम् स्मृत्वा आप्त-
कामः। अखिलभुवि गतानि अशेषाणि
पुण्यक्षेत्राणि ददर्श। आनन्दकन्दः सः
अयम् भास्करानन्दयोगी काश्याम्
आनन्दकुञ्जे विपिने निवसति ॥ २ ॥

शब्दार्थ–जिस ने सब गुणों से युक्त (इसी से) बड़े मोह रूप स्त्री पुत्र आदि को छोड़ कर। वेदफल स्वरूप देवों के देव को स्मरण कर सब कामनाओं को पाकर। सम्पूर्ण पृथ्वी के सब पुण्य स्थानों का दर्शन किया है। आनन्दकन्द वह श्री भास्करानन्द योगी जी महाराज काशी में आनन्द कुञ्जबन में निवास कर रहे हैं ॥२॥

भावार्थ—जिस ने सब गुणों से युक्त इसी से बड़े मोह स्वरूप जो स्त्री पुत्र आदि उन सब को छोड़ कर और वेदफल स्वरूप देवों के देव परमेश्वर का स्मरण कर सम्पूर्ण कामना को पाया है। पृथ्वी के सब पुण्य तीर्थों का दर्शन किया है। आनन्द-स्वरूप वह श्री भास्करानन्द योगी जी काशी जी में आनन्द बाग में निवास कर रहे हैं ॥ २ ॥

निर्जित्येन्द्रियवैरिपक्षनिवहं यस्य प्रसादात् सदा मोहध्वान्तविदूर-शुभ्रमनसः सन्तः सुखं शेरते। यं-दृष्ट्वा कृतकृत्यमत्र मनुजाः स्वा-

त्मानमेवा ऽनिशं मन्यन्ते स दि-
गम्बरो विजयते श्रीभास्करान-
न्दवित् ॥ ३ ॥

अन्वयः—सन्तः यस्य प्रसादात् इन्द्रि-
यवैरिपक्षनिवहम् निर्जित्य । सदा मोह
ध्वान्तविदूरशुभ्रमनसः सुखम् शेरते ।
अत्र मनुजाः यम् दृष्ट्वा एव स्वात्मानम्
कृतकृत्यम् अनिशम् मन्यन्ते । स दिग-
म्बरः भास्करानन्दवित् विजयते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—सन्त जन जिस के प्रसाद से इन्द्रिय
रूपी शत्रु समूह को जीतकर। सदा अज्ञान के
अन्धकार से दूर उज्वलचित्त होकर सुख से
सोते हैं। (और) संसार में मनुष्य लोग जिस
का दर्शन मात्र करके अपने को कृतार्थ सदा
मानते हैं। वह दिगम्बर श्रीभास्करानन्द जी
विद्वान् सब उत्कर्ष के साथ विराजमान हैं॥३॥

भावार्थ—सन्त लोग जिसकी कृपासे इन्द्रियरूपी अपने शत्रु के समूह को जीतकर और सदा अज्ञान रूपी अन्धकार से रहित उज्वल चित्त वाले होकर सुख से सोते हैं अर्थात् निश्चिन्त रहते हैं । और यहां मनुष्य लोग जिनका केवल दर्शन कर के ही अपने को सदा कृतकृत्य मानते हैं वह दिगम्बर श्री भास्करानन्द जी विद्वान् सब उत्कर्ष के साथ विराजमान हैं ॥ ३ ॥

मायामात्रविनिर्मितं हि भुवनं मत्वा स विज्ञेश्वरो धृत्वा तत् परमं पदं हृदि मुदा तुर्याश्रमे संस्थितः । यश्चेन्द्रादिसमस्तदेवपदवीं तुच्छां सदा मन्यते सोऽयं संविदधातु वाञ्छितफलं श्रीभास्करानन्दवित् ॥ ४ ॥

अन्वयः—सः विज्ञेश्वरः भुवनं मायामात्रविनिर्मितम् मत्वा । हृदि मुदा तत्

परमम् पदम् धृत्वा तुर्याश्रमे संस्थितः। यश्च सदा इन्द्रादिसमस्तदेवपदवीम् तुच्छाम् मन्यते। सः अयम् श्रीभास्करानन्दवित् वाञ्छितफलम् संविदधातु ॥४॥

शब्दार्थ–वह विद्वानों में श्रेष्ठ (स्वामी जी) संसार को माया ही से रचा गया है यह मान। हृदय में हर्ष से उस परमपद को धारण कर के चौथे आश्रम में स्थित हुए। और जो सदा इन्द्र आदि देवताओं की पदवी को तुच्छ मानते हैं। वही यह श्री भास्करानन्द जी विद्वान् मनोवाञ्छित फल को देवें ॥ ४ ॥

भावार्थ--उस विद्वानों में श्रेष्ठ यतीन्द्र ने संसार के माया से रचा गया है अर्थात् मिथ्या है यह मान कर अपने हृदय में हर्ष से उस परमपद के धारण कर के चतुर्थ आश्रम अर्थात् संन्यास के ग्रहण किया है और जो सदा इन्द्र आदि देवताओं की पदवी के तुच्छ मानते हैं वही यह श्री भास्करानन्द जी विद्वान् मनोवाञ्छित फल के देवें ॥४॥

क्षिप्रं सिद्धिम ऽवाप्नुवन्ति नि-

खिलां यत्संस्मृतेः सज्जना यं सर्वे प्रणमन्ति भूपतिवराः स्वाभीष्ट-सिद्धै मुदा। विज्ञाः पुण्यतमं च-रित्रमनिशं गायन्ति यस्याऽखि-लाः, सोऽयं संविदधातु वाञ्छित-फलं श्रीभास्करानन्दवित् ॥५॥

अन्वयः—सज्जनाः यत्संस्मृतेः निखि-लाम् सिद्धिम् क्षिप्रम् अवाप्नुवन्ति। यम् सर्वे भूपतिवराः स्वाभीष्टसिध्यै मुदा प्र-णमन्ति। अखिलाः विज्ञाः यस्य पुण्य-तमम् चरित्रम् अनिशम् गायन्ति। सः अयम् श्रीभास्करानन्दवित् वाञ्छित-फलम् संविदधातु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ—सज्जन लोग जिस के स्मरण करने से सब सिद्धि को शीघ्र पाते हैं। जिस को सब

राजा लोग अपने इष्ट की सिद्धि के लिये आनन्द से प्रणाम करते हैं। सब विद्वान् जिस के पुण्य चरित को सदा गान करते हैं। वही यह श्रीभास्करानन्द विद्वान् वाञ्छित फल को देवें॥५॥

भावार्थ—सज्जन लोग जिस के स्मरण करने ही से सब सिद्धि को शीघ्र पाजाते हैं और जिसे सब राजा लोग अपने इष्ट की सिद्धि के लिये आनन्द युक्त होकर प्रणाम करते हैं। और सब विद्वान् लोग जिसके अति पुनीत चरित्र को सदा गाया करते हैं वही यह श्री भास्करानन्द विद्वान् मेरे वाञ्छित फल को देवें ॥५॥

सुभुक्तिमुक्तिदायकं यतीन्द्रमत्र भास्करा-दिनन्दनामकं शिवस्वरूपमाशुकामदम्। नरेन्द्रसेव्यसत्पदं वरप्रसूनमालकं गुरुं भजाम्यहं सदा स्वभक्तवृन्दपालकम् ६

अन्वयः—अहम् अत्र सुभुक्तिमुक्तिदायकम् नरेन्द्रसेव्यसत्पदम् । वरप्र-

सूनमालकम् स्वभक्तवृन्दपालकम्। आ-
शु कामदम् भास्करादिनन्दनामकम्
शिवस्वरूपम्। यतीन्द्रम् गुरुम् सदा भ-
जामि ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—मैं यहां सुन्दरभोग और मोक्ष के दाता, राजा लोगों से सेवित चरण। उत्तम पुष्पों की माला वाले अपने सब भक्तों के रक्षक। शीघ्र मनोरथ पूर्ण करने वाले भास्करा शब्द है आदि में जिसके ऐसे नन्द नाम वाले (अर्थात् भास्करानन्द नाम धारी) शिवस्वरूप यतीन्द्र गुरु का सदा भजन करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—मैं यहां सुन्दर भोग पदार्थ और मोक्ष के दाता, राजा महाराजों से सेवित चरण उत्तमोत्तम फूलों की माला वाले अपने भक्त जनों के रक्षक अति शीघ्र कामना के देने वाले भास्करानन्द नाम के शिव-स्वरूप यतीन्द्र गुरु जी का सदा भजन करता हूं ॥६॥

स्वभासया विभासयन् स्वभक्त-
हृत्सरोरुहं सुदुर्लभं च तद्विभोः

परं पदं प्रदर्शयन्। सदा विनोद-
कानने चरन्तमऽत्र भास्करादि-
नन्दनामकं परं गुरुं नमामि स-
तन्तम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—अहम् अत्र स्वभासया स्व-
भक्तहृत्सरोरुहम् विभासयन्। च वि-
भोः सुदुर्लभं तत् परम् पदम् प्रदर्श-
यन्। सदा विनोद कानने चरन्तम् भा-
स्करादिनन्दनामकम् परम् गुरुम् स-
न्ततम् नमामि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—मैं यहां, अपने प्रकाश से अपने
भक्तों के हृदय कमल को विकसित करते हुए
और सर्वव्यापी के अतिदुर्लभ उस परमपद को
दिखाते हुए। सदा आनन्द वन में विचरने वाले
भास्करानन्द नाम के परम गुरु जी को सदा
नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—अपने तेज से भक्तजनों के हृदय कमल को प्रफुल्लित करते हुए। और सर्वव्यापी परब्रह्म के अतिदुर्लभ उस परमपद को दिखाते हुए सदा आनन्द वन में विचरते हुए श्रीभास्करानन्द नाम के परमगुरु जी को मैं सदा नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

हे दीनबन्धुभगवन् भवसागरेऽस्मिन् मग्नं सुमोहतमसावृतचेतसं माम्। नो चेत् समुद्धरसि वै स्वकृपाकटाक्षै,-र्दासोऽहमत्र वद कं शरणं व्रजामि ॥ ८ ॥

अन्वयः—हे दीनबन्धुभगवन्! अस्मिन् भवसागरे मग्नम्। सुमोहतमसा वृतचेतसम् माम्। स्वकृपाकटाक्षैः नो समुद्धरसि चेत्। वै वद। दासः अहम् अत्र कं शरणम् व्रजामि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—हे दीनों के बन्धु भगवन्! इस भव-

सागर में मग्न और अति मोह रूपी अन्धकार से आवृत चित्त मेरा। अपने कृपा कटाक्ष से उद्धार न कीजिये तो। कहिये। दास मैं यहां किस के शरण जाऊं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे दीन जनों के वन्धु भगवान् श्रीभास्करानन्द जी महाराज! इस संसार समुद्र में डूबे और अज्ञानरूपी अन्धकार से अन्ध मुझ को अपनी कृपा के कटाक्ष से न उबारो तो कहिये आप का दास मैं इस संसार में किस की शरण जाऊं ॥ ८ ॥

इति श्री मिथिला महीसुरेण ज्योतिर्वित् सोनेलाल शर्मणा विरचितं यतीन्द्रस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



श्रीभास्करानन्दाष्टकम् ॥

भुजङ्गप्रयातंछन्दः

श्रीगणेशाय नमः ॥ त्रयीसिद्ध-
सत्कर्मधूताघसंघं सदा संयमा-
भ्यासवश्येन्द्रियं प्राक्। ततः श्रौ-
तयुक्त्या भवे संविरक्तं भजे भा-
स्करानन्दमीड्यं मुनीशम्॥ १ ॥

अन्वयः—त्रयीसिद्धसत्कर्मधूताघसंघ-
म्। प्राक् सदा संयमाभ्यासवश्येन्द्रि-
यम्। ततः श्रौतयुक्त्या भवे संविरक्तम्।
ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥१॥

शब्दार्थ—वेदोक्त उत्तम कर्मों से जिस के पाप
समूह नष्ट हो गए हैं। पहिले से सदा संयम

के अभ्यास करने से जिन की इन्द्रियां वश में हो रहीं हैं। इसी कारण श्रुति की युक्ति द्वारा जो इस संसार में विरक्त हैं। ऐसे स्तुति के योग्य मुनियों में श्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—वेदों में कहे गए कर्मों के करने से जिस के सब पाप नष्ट हो गए हैं और पहिले सदा किये गये ध्यान धारणा समाधि से जिन की इन्द्रियां वश में हो रहीं हैं और अब श्रुति की युक्तियों से संसार से विरक्त हैं ऐसे स्तुति करने के योग्य मुनियों में श्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ १ ॥

महावाक्यतः सारमाकृष्यभावं
भवच्छेदबीजं सुखस्यैकधाम ।
स्थितं निर्विकल्पं सदा शान्तमू-
र्तिं भजे भास्करानन्दमीड्यं मु-
नीशम् ॥ २ ॥

अन्वयः—महावाक्यतः भवच्छेदवीज-

म् सारम् भावम् आकृष्य निर्विकल्पम् स्थितम्। सुखस्य एकधाम सदा शान्त-मूर्त्तिम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ २ ॥

शब्दार्थ—महावाक्य से संसार के नाश का बीज सारांश भाव को आकर्षण करके निर्विकल्प जो स्थित हैं। (ऐसे)। सुख के मुख्यस्थान शान्त मूर्त्ति स्तुति करने के योग्य मुनीश्वर श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—तत्त्वमसि इत्यादि श्रुति के महावाक्यों से संसार के आवागमन के नाश करने वाले अर्थात् मुक्ति दायक सारांश को निकाल कर जो निर्विकल्प अर्थात् ज्ञाता ज्ञेय इत्यादि विभाग से रहित स्थित हैं ऐसे सुख के मुख्यस्थान शान्त स्वरूप स्तुति के योग्य मुनिश्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥२॥

भवाब्धौ निमग्नान ऽविज्ञान् भयार्त्तान् समुद्धर्त्तुकामो य आस्ते ऽविमुक्ते। निराशं कृपालुं तमा-

शावसानं भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः भवाब्धौ निमग्नान् भयार्त्तान् अविज्ञान् समुद्धर्त्तुकामः अविमुक्ते आस्ते। तम् निराशम् कृपालुम् आशावसानम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—जो संसार रूपी समुद्र में बूड़े हुए भयभीत अज्ञानियों के उद्धार करने की इच्छा से काशी जी में रहते हैं। उन आशा रहित कृपालु दिगम्बर स्तुति के योग्य मुनीश्वर श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—संसार समुद्र में बूडे हुए भयभीत अज्ञानियों के उद्धार करने के लिये जो काशी जी में वास कर रहे हैं उन आशा रहित अर्थात् पूर्णकाम कृपालु दिगम्बर स्तुति करने के योग्य मुनिश्रेष्ठ श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ३ ॥

कलौ लोकशिक्षावतारस्वरूपं सु-

बुद्धात्मतत्त्वं तदेकाग्रचित्तम्। स-
मानारिमित्रं हतर्त्तुप्रभावं भजे
भास्करानन्दमीडयं मुनीशम्॥४॥

अन्वयः—कलौ लोकशिक्षावतारस्वरू-
पम्। सुबुद्धात्मतत्त्वम् तदेकाग्रचित्तम्।
समाना ऽरिमित्रम् हतर्त्तुप्रभावम्। ई-
डयम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे॥४॥

शब्दार्थ—कलियुग में लोगों की शिक्षा के लिये अवतार स्वरूप हैं। भलीभांति आत्मतत्त्व को जानते हैं और उस आत्मविचार में जिन का चित्त लगा रहता है। शत्रु मित्र को जो एक सा समझते हैं और जिन को ऋतु का प्रभाव नहीं व्यापता। ऐसे स्तुति योग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं॥४॥

भावार्थ—कलियुग में लोगों की शिक्षा के लिये अवतार लिया है भलीभांति आत्मतत्त्व के जानते हैं और उसी परमात्मा के विचार में जिन का चित्त

लगा रहता है शत्रु मित्र को एकसी दृष्टि से जो देखते हैं और जिन पर ऋतु अर्थात् ग्रीष्म वर्षा शरत् आदि का प्रभाव नहीं व्यापता अर्थात् शीत समय में भी वस्त्र तक धारण नहीं करते उन स्तुति के योग्य मुनीश्वर श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥४॥

उदेतीच्छया यस्य गूढात्मभावो नृणां मानसेऽज्ञानरुद्धात्मनां तु। व्यरंसीद ऽविद्याप्रभावो यतस्तं भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—यस्य इच्छया अज्ञानरुद्धात्मनाम् तु। नृणाम् मानसे गूढात्मभावः उदेति । यतः अविद्याप्रभावः व्यरंसीत्। तं ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे॥

शब्दार्थ—जिनकी इच्छा से अज्ञान से आवृत चित्त वाले भी । मनुष्यों के मन में अतिकठिन आत्मज्ञान उदय होता है । जिनसे अज्ञान का

प्रभाव नष्ट हो जाता है। उन स्तुतियोग्य मुनीश भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—जिनकी इच्छा मात्र से अज्ञानी मनुष्यों के भी हृदय में अतिकठिन आत्मज्ञान उदय होता है और जिनकी कृपा से अविद्या का अर्थात् माया का प्रभाव नष्ट हो जाता है ऐसे स्तुति के योग्य मुनीश भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ५ ॥

भवोद्भूतभोगं सुरेशस्य लोकं त्रि-
वर्गं च तुच्छं सदा मन्यते यः ।
पिबन्तं रसं ब्रह्मचिद्रूपमग्र्यं भजे
भास्करानन्दमीशं मुनीशम् ॥६॥

अन्वयः—यः सदा भवोद्भूतभोगम् सुरेशस्य लोकम्। त्रिवर्गम् च तुच्छम् मन्यते। अग्र्यम् चिद्रूपम् ब्रह्मरसम् पिबन्तम्। ईडयम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—जो सदा संसारोत्पन्न भोग को, इन्द्र

लोक को। और धर्म अर्थ काम को तुच्छ मानते हैं। और सर्व श्रेष्ठ चित्स्वरूप ब्रह्मरस को पीते हैं। (उन) स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो सदा संसारी सुख को, इन्द्रादि देव लोक के सुख को और धर्म अर्थ काम को तुच्छ मानते हैं अर्थात् ब्रह्मानन्द के आगे कुछ माल नहीं समझते और सर्व श्रेष्ठ चित् रूप ब्रह्मानन्द को पान कर रहे हैं उन स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ६ ॥

यथा दाम्नि सर्पो यथा स्वप्नबोधो मरौ वारि यद्वद् यथा चेन्द्र-जालम् । तथा भ्रान्तिभूतं भवं प्रेक्षमाणं भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—दाम्नि यथा सर्पः, यथा स्वप्रबोधः, यद्वद् मरौ वारि, यथा च

इन्द्रजालम् । भवम् तथा भ्रान्तिभूतम् प्रेक्षमाणम् ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—रसरी में जैसे सर्प (बुद्धि) जैसे स्वप्न का देखना, जैसे मृगतृष्णा में जल (बुद्धि) और जैसे इन्द्र जाल का (देखना मिथ्या है) इसी प्रकार संसार को भ्रम से उत्पन्न मानने वाले स्तुतियोग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—रसरी को सर्प समझना जैसे भ्रम है जैसे स्वप्न के समय का शिर कटना आदि भ्रम है अर्थात् मिथ्या है और मरुदेश में मृगतृष्णा में जल का दीख पड़ना भ्रम है और इन्द्रजाल का (तमासा) सब भ्रम स्वरूप है इसी प्रकार संसार को भ्रम से उत्पन्न मानने वाले स्तुतियोग्य मुनीश श्रीभास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥ ७ ॥

जगन्नश्वरं भोग आधे निदानं चिदेका सतीत्येव नित्यं विचि-

न्त्यम् । इतीवेह विज्ञापयन्तं स्वकृत्या भजे भास्करानन्दमीड्यं मुनीशम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—जगत् नश्वरम्, भोगः आधेः निदानम् । एका चित् सती इत्येव नित्यम् विचिन्त्यम् । इह इतीव स्वकृत्या विज्ञापयन्तम् । ईड्यम् मुनीशम् भास्करानन्दम् भजे ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जगत् नाशवान् है और सुख भोग आधि का उत्पन्न करने वाला है। एक चैतन्य ही सत् है, यही है नित्य विशेष चिन्तवन करने योग्य जिन को। (और यहां मानो कि) इसी को अपने कार्यों से दिखा रहे हैं। ऐसे स्तुति योग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥८॥

भावार्थ—संसार, क्षण क्षण में नाशवान् है और सुख भोग पीछे से मन में दुःख को उत्पन्न करता है केवल चैतन्य रूप ईश्वर ही सत् है इसी का सदा

विशेष चिन्तवन करनेवाले और संसार में इसी को जो अपने कामों से दर्शा रहे हैं ऐसे स्तुति के योग्य मुनीश श्री भास्करानन्द जी का भजन करता हूं ॥८॥

नमः परमहंसाय भास्करानन्द-मूर्त्तये । भक्ताभीष्टप्रदाया ऽऽशु साक्षाच्चैतन्यरूपिणे ॥ ९ ॥

अन्वयः—आशु भक्ताभीष्टप्रदाय साक्षात् चैतन्यरूपिणे । परमहंसाय भास्करानन्दमूर्त्तये नमः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ—शीघ्र भक्तों को अभिलषित देनेवाले साक्षात् परब्रह्म स्वरूप। परमहंस भास्करानन्द मूर्त्ति को नमस्कार है ॥ ९ ॥

भावार्थ—शीघ्र ही भक्तों के मनोरथ के पूर्ण करने वाले प्रत्यक्ष चिदानन्द स्वरूप परमहंस श्रीभास्करानन्द मूर्त्ति को नमस्कार करता हूं ॥ ९ ॥

इति श्री गंगाचरण वेदान्त वागीशेन
विरचितं श्री भास्करानन्दाष्टकं
सम्पूर्णम्

श्रीगणेशाय नमः ॥ काशीनिवासं यशसा प्रकाशं सर्वाघनाशं शरणागतानाम् । ब्रह्मस्वरूपं परमावधूतं तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ १ ॥

अन्वयः—काशीनिवासं यशसा प्रकाशम् । शरणागतानाम् सर्वाघनाशम् । ब्रह्मस्वरूपम् परमावधूतम् । तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ १ ॥

शब्दार्थ—काशी जी के निवासी यश से प्रकाशमान। और शरणा गत के सब पापों का नाश करने वाले । ब्रह्मस्वरूप अवधूत वेष। प्रसिद्ध भास्करानन्द गुरु को प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—काशी जी में वास कर रहे हैं यश से सर्वत्र प्रकाशमान हो रहे हैं और शरण में आए हुए मनुष्यों के सब पापों का नाश कर देते हैं ऐसे

ब्रह्मस्वरूप अवधूत वेष प्रसिद्ध श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

यद्दर्शनं यत्स्मरणं यदर्चा चेतो विशुद्धं कुरुते जनानाम्। भवापवर्गञ्च ततो विधत्ते तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ २ ॥

अन्वयः—यद्दर्शनम् यत्स्मरणम् यदर्चा जनानाम् चेतो विशुद्धम् कुरुते। ततः भवापवर्गम् च विधत्ते तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ २ ॥

शब्दार्थ— जिन का दर्शन जिन का स्मरण और जिन का पूजन मनुष्य के चित्त को निर्मल कर देता है उस के अनन्तर संसार से मुक्त भी कर देता है। उन श्री भास्करानन्द गुरु को प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

भावार्थ—जिन का दर्शन, जिन का पूजन अथवा जिन का स्मरण करना मनुष्यों के चित्त को शुद्ध

अर्थात् पाप रहित कर देता है । और उपरान्त संसार से उसे मुक्त भी कर देता है ऐसे श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ २ ॥

चेतो यदीयं विषयेष्वऽसक्तं नक्तंदिवं ब्रह्मसुखाऽवमग्नम् । निर्वातदीपार्चिरिवा ऽप्रकम्पं तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ३ ॥

अन्वयः—यदीयम् चेतः विषयेषु असक्तम् । नक्तंदिवम् ब्रह्मसुखावमग्नम् । निर्वातदीपाऽर्चिः इव अप्रकम्पम् । तम् गुरुम् भास्करानन्दम् नमामि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—जिन का चित्त विषयों में नहीं लगा है । दिन रात ब्रह्मानन्द सुख में मग्न है । निर्वात (स्थान में स्थित) दीपक की टेम के समान कंप रहित है। उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिन का मन विषयों से विरक्त है दिन रात ब्रह्मानन्द सुख में मगन रहता है। और जहां वायु नहीं बहती उस स्थान में जलते हुए दीपक की (लपक) टेम के समान निष्कम्प अर्थात् स्थिर प्रकाशमान है उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ३ ॥

चेतश्चरी तृप्तिकरी सदक्ष्णा मऽ-क्षोभकर्त्री सुहृदां दयार्द्रा । मूर्त्ति र्यदीया बुधवन्दनीया तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ४ ॥

अन्वयः-यदीया मूर्त्तिः दयार्द्रा सुहृदाम् चेतश्चरी। अक्षोभकर्त्री सदक्ष्णाम् तृप्तिकरी। बुधवन्दनीया तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—जिन की मूर्त्ति, दया से युक्त है। सुहृद लोगों के चित्त में विचरती है क्षोभ को दूर कर देती है। सज्जन लोगों के नेत्रों को

तृप्त करती हैं पण्डित लोगों से प्रणाम करने के योग्य हैं उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिन की मूर्त्ति दया युक्त है सुहृद लोगों के हृदय में विचरती है सज्जन लोगों के नेत्रों को सन्तुष्ट करती है चित्त के डामाडोल को (क्षोभ को) दूर कर देती है और पण्डित लोगों से प्रणाम करने के योग्य है उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥

यत्पादपद्मद्वयदर्शनाय नित्यं चतुर्वर्गफलप्रदाय। दूरादुपायान्ति नृपा द्विजेन्द्रा स्तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ५ ॥

अन्वयः—चतुर्वर्गफलप्रदाय यत् पादपद्मद्वयदर्शनाय। नृपाः द्विजेन्द्राः दूरात् नित्यम् उपायान्ति। तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ५ ॥

शब्दार्थ–धर्म अर्थ काम और मोक्ष के देने वाले जिन के चरण कमलों के दर्शन के लिये। राजा लोग और द्विजों में श्रेष्ठ लोग दूर से नित्य आया करते हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ—धर्म अर्थ काम मोक्ष के देने वाले जिन के चरणारविन्दों के दर्शन के लिये राजा लोग और द्विजों में श्रेष्ठ लोग दूर से नित्य आया करते हैं उन श्री भास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥५॥

दिगम्बरं दिक्पतिवन्द्यमानं सानन्दमाऽऽनन्दवनैकसिंहम् । कृतारिषड्वर्गजयं शुभाशयं तं भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ६ ॥

अन्वयः–दिगम्बरम् दिक्पतिवन्द्यमानम्। सानन्दम् आनन्दवनैकसिंहम् कृतारिषड्वर्गजयम् शुभाशयम् तम् भास्करानन्दगुरुम् (अहम्) नमामि ॥६॥

शब्दार्थ—दिगम्बर हैं और दिशा के स्वामियों से प्रणाम किये जाते हैं। आनन्द युक्त हैं और आनन्द वन के एक सिंह समान हैं। काम आदि छ शत्रुओं को जीत चुके हैं और अच्छी वासना वाले हैं ऐसे उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूं॥ ६॥

भावार्थ—दिगम्बर हैं तो भी दिशा के स्वामी अर्थात् बड़े २ राजा लोगों से प्रणाम किये जाते हैं। आनन्द से युक्त हैं और आनन्द वन के एक सिंह हैं अर्थात् आनन्द समूहों के मध्य में विराजमान हैं। काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य आदि षट् शत्रुओं को जीते हैं ऐसे उत्तम वासना वाले श्रीभास्करानन्द गुरु जी को मैं प्रणाम करता हूं॥६॥

षड्दर्शनज्ञाननिधानमानसं तत्सद्वचोनित्यविमर्शतत्परम्। नैर्गुण्यनिर्धूतमनोमलं परं तं भास्करानन्दगुरुं नतोऽस्म्यऽहम्॥७॥

अन्वयः—षड्दर्शनज्ञाननिधानमान-

सम् । तत्सद्वचोनित्यविमर्शतत्पर-
म् । नैर्गुण्यनिर्धूतमनोमलम् तम् पर-
म् । भास्करानन्दगुरुम् अहम् नतः
अस्मि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ–जिस का मन षट् शास्त्रों के ज्ञान का खानि है। और उन शास्त्रों के उत्तम वचनों के विचार में सदा लगा रहता है। जिस ने निर्गुणता से मन के मल को दूर कर दिया है उस सर्व श्रेष्ठ। श्री भास्करानन्द जी गुरु को मैं प्रणाम करता हूं॥ ७॥

भावार्थ–जिन का मन मीमांसा न्याय वैशेषिक सांख्य वेदान्त योग इन शास्त्रों के ज्ञान का निधान है और इन शास्त्रों के उत्तम वचनों के विचार में सदा लगा रहता है और रजोगुण तमोगुण से अलग होने से मन की मलिनता रहित है। उन सर्व श्रेष्ठ श्रीभास्करानन्द गुरु को मैं प्रणाम करता हूं॥ ७॥

यस्तत्त्वमस्यादिविचारदक्षः स्व-
च्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी ।

समं सुवर्णं सिकता च यस्य तं
भास्करानन्दगुरुं नमामि ॥ ८ ॥

अन्वयः—यः तत्त्वमस्यादिविचारदक्षः। स्वच्छान्तरात्मा श्रुतिमार्गगामी। यस्य सुवर्णम् सिकता च समम्। तम् भास्करानन्दगुरुम् नमामि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—जो तत्त्वमसि आदि वाक्यों के विचार में चतुर हैं। इसी से जिनका अन्तरात्मा स्वच्छ है और श्रुति मार्ग में विचरता है। जिन को सोना और बालू एकसी है। उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जो तत् त्वम् असि इत्यादि वेदान्त के महावाक्यों के विचार करने में कुशल हैं इसी से जिन का अन्तरात्मा स्वच्छ है और श्रुति मार्ग में विचर रहा है और जिन के चित्त में सोना और मिट्टी बराबर है उन श्रीभास्करानन्द गुरु जी को प्रणाम करता हूं ॥ ८ ॥

श्रीमन्महेशानुचरः सनाढ्यो वृ-

न्दावनः सद्गुरुलब्धविद्यः । गुर्वष्टकं तेन कृतं प्रसत्त्यै श्रीमद्गुरूणां करुणाकराणाम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—श्रीमन्महेशानुचरः सनाढ्यः। वृन्दावनः सद्गुरुलब्धविद्यः । तेन करुणाकराणाम् श्रीमद्गुरूणाम् प्रसत्त्यै गुर्वष्टकम् कृतम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—श्रीयुत महादेव जी के अनुचर सनाढ्य वृन्दावन ने । सत् गुरु से विद्या पायी है । उस (वृन्दावन ने) करुणा के सागर श्री गुरु जी की प्रसन्नता के लिये गुरु के अष्टक को रचा है ॥ ९ ॥

भावार्थ—श्री महादेव जी के भक्त सनाढ्य ब्राह्मण वृन्दावन ने सद् गुरु से विद्या पायी है। उस वृन्दावन ने दया के सागर श्री गुरु जी प्रसन्न हों इस लिये गुरु जी के अष्टक को रचा है ॥ ९ ॥

इति श्री वृन्दावन शर्म विरचितं गुर्वष्टकं सम्पूर्णम् ।

श्रीः—पातु ॥

अथाद्यं विभुं विघ्नराजं गणेशं
शिवानन्ददं शङ्करं सर्वभाजम् ।
प्रणम्याहमानन्दकन्दस्वरूपं प्र-
कुर्वे स्तवं तं यते विश्ववन्द्यम् ॥१॥

अन्वयः—अथ आद्यम् विभुम् विघ्नराजम् गणेशम् । शिवानन्ददम् सर्वभाजम् शङ्करम् प्रणम्य । अहम् यतेः आनन्दकन्दस्वरूपम् विश्ववन्द्यम् तम् स्तवम् प्रकुर्वे ॥ १ ॥

शब्दार्थ—अब आद्य परमसमर्थ विघ्नों के राजा श्रीगणेश जी को । और शुभ आनन्द के दाता सर्वशक्तिमान् शिव जी को प्रणाम करके । मैं यतीन्द्र जी के आनन्दकन्द स्वरूप जगत् वन्द्य उस स्तोत्र को करता हूं ॥ १ ॥

भावार्थ—सब के आदि परमसमर्थ विघ्नों के राजा श्री गणेश जी को और शुभ आनन्द के देनेवाले सर्व शक्तिमान् शिव जी को प्रणाम करके मैं यतीन्द्र जी के आनन्दकन्दस्वरूप जगत् वन्द्य उस स्तोत्र को रचता हूं ॥१॥

पितृमातृगुरुं परिपूज्य गुणै र्यतिमार्गमलं सुखदं सुखदैः । अदधात् परिभाव्य सुखं विषयं कुलमानमलं परिहाय गृहम् ॥ २ ॥

अन्वयः—सुखदैः गुणैः पितृमातृगुरुम् परिपूज्य । सुखम् विषयम् परिभाव्य । कुलमानम् गृहम् अलम् परिहाय । अलम् सुखदम् यतिमार्गम् अदधात् ॥२॥

शब्दार्थ—सुख के देनेवाले गुणों से माता पिता गुरु की पूजा करके । सुख के विषय को विचार कर वा अनादर करके । और कुल के मान को और घर को बिलकुल छोड़ कर अति सुखदायी यति के मार्ग को धारण किया ॥२॥

भावार्थ—सुखदायी अपने गुणों से माता पिता और गुरु की पूजा करके। सुख के विषय स्त्री पुत्र धन आदि का अनादर कर कुल के मान को और घर को बिलकुल छोड़ कर जिसने अतिसुखदायी यति के मार्ग सन्यास को धारण किया ॥ २ ॥

शरीरान्तकाले द्वयोस्तत्र गत्वा ऽददाद् ब्रह्मचैतन्यपूर्णं मनोजम् । तदा ज्ञानमानन्दकन्दं स्वपित्रोः सदा तं यतिं भास्करानन्दमीडे ॥ ३ ॥

अन्वयः—यः स्वपित्रोः द्वयोः शरीरान्तकाले मनोजम् तत्र गत्त्वा। ब्रह्मचैतन्य पूर्णम् ज्ञानम् अददात्। तम् आनन्दकन्दम् यतिम् भास्करानन्दम् सदा ईडे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—जिन्हों ने अपनी माता और पिता दोनों के शरीरान्त समय में अपनी इच्छा से

वहां जाकर। ब्रह्मचैतन्य पूर्ण ज्ञान को दिया। उस आनन्दकन्द यतीन्द्र भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं॥ ३ ॥

भावार्थ—जिन्हों ने अपनी माता और पिता दोनो के मरण समय में अपनी इच्छा से वहां जाकर ब्रह्म चैतन्यपूर्ण ज्ञान को दिया था उस आनन्दकन्द यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की स्तुति सदा करता हूं ॥३॥

यदा ऽकस्य भाग्योदयेन प्रयाति
स्वपद्भ्यां गृहे तद्गृहं तीर्थरूपम्।
भवत्यम्बराद्यम्बरं भेदशून्यं यतिं
सर्वदा भास्करानन्दमीडे ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदा भाग्योदयेन अकस्य गृहम् स्वपद्भ्याम् प्रयाति। तद्गृहम् तीर्थरूपम् भवति। (तम्) अम्बराद्यम्बरम् भेदशून्यम् यतिम् भास्करानन्दम् सर्वदा ईडे ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—जब कभी भाग्य के उदय होने से

दुःखी के घर को अपने चरणों से जाते हैं। उस का घर तीर्थस्वरूप हो जाता है। उस दिगम्बर भेद रहित यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं॥ ४॥

भावार्थ—जब कभी भाग्य के उदय होने से दुःखी पुरुष के घर को अपने चरणों से पवित्र करते हैं। उसकाघर तीर्थ स्वरूप पवित्र हो जाता है। ऐसे जगत् पावन उस दिगम्बर भेद रहित यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं॥ ४॥

आनन्दकाननिवासमऽजन्मनिष्ठं वातप्रवृत्तिमचलं भवभावशून्यम्। भाग्योदयं वितनुते सततं जनानां ब्रह्माण्डतीर्थहृदयं शिवदं तमीडे॥ ५॥

अन्वयः—(यः) सततम् जनानां भाग्योदयम् वितनुते। तम् आनन्दकाननिवासम् अजन्मनिष्ठम्। वातप्रवृ-

त्तिम् अचलम् भवभावशून्यम् । शिवदम् ब्रह्माण्डतीर्थहृदयम् ईडे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ-(जो) सदा जनों के भाग्यों का उदय कर देते हैं । उस आनन्द वन के रहने वाले ब्रह्ममें तत्पर । श्वास के रोध मे प्रवृत्त, स्थिर, संसारी भाव से रहित, कल्याण के दाता, और ब्रह्माण्ड भर के तीर्थस्वरूप हृदय वाले (यतीन्द्र महाराज) की स्तुति करता हूं ॥ ५॥

भावार्थ—जो सदा भक्तजनों के भाग्य का उदय किया करते हैं उन आनन्द वन के रहने वाले अजन्मा में अर्थात् परब्रह्म में तत्पर प्राणायाम में लगे हुए स्थिर, संसारी भाव से रहित कल्याण के दाता और ब्रह्माण्ड भर के तीर्थरूप हृदय वाले अर्थात् अति पवित्रान्तःकरण श्री यतीन्द्र महाराज की स्तुति करता हूं ॥५॥

कृतो येन यज्ञस्तपो दानतीर्थे भवत्याशु बुद्धि विंशाला बुधेन । तया सच्चिदानन्दसङ्गस्य सङ्गं तदा तेन मोक्षं यतीन्द्रं तमीडे ॥६॥

अन्वयः—येन बुधेन तपः (कृतम्) दान-तीर्थे (कृते) यज्ञः कृतः। (तस्य) बुद्धिः आशु विशाला भवति। तया सच्चिदानन्द सङ्गस्य सङ्गम्। (प्राप्नोति) तदा तेन मोक्षम् (प्राप्नोति) (एतादृशम्) यतीद्रम् ईड़े ॥६॥

शब्दार्थ—जिस पण्डित से तप दान तीर्थ-सेवा और यज्ञ किया गया है (उस की)। बुद्धि शीघ्र बड़ी हो जाती है। उस बुद्धि के प्रभाव से सच्चिदानन्द में तत्पर (यतीन्द्र) का सङ्ग प्राप्त होता है। तब उस सङ्ग के प्रभाव से मोक्ष को पाता है। ऐसे यतीन्द्र जी की स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

भावार्थ—जिस पण्डित ने तप दान तीर्थसेवा और यज्ञ किया है पहिले उस की बुद्धि शीघ्र बड़ी हो जाती है उस बुद्धि के प्रभाव से सच्चिदानन्द पर-मेश्वर में रत श्री यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी का सङ्ग प्राप्त होता है तब यतीन्द्र जी के सङ्ग के प्रभाव से मोक्ष मिलता है। ऐसे यतीन्द्र जी महाराज की स्तुति करता हूं ॥ ६ ॥

विभुं विश्वनाथं सदोदारकीर्त्ति
शिवं भोगदं रोगकालं विशालम्।
प्रसन्नेन्द्रियं धर्ममूलं वरेण्यं सदा
ध्यानगं भास्करानन्दमीडे ॥७॥

अन्वयः—विभुम् विश्वनाथम् सदोदार कीर्त्तिम् । शिवम् भोगदम् रोगकालम् विशालम् । प्रसन्नेन्द्रियम् धर्ममूलम् व-रेण्यम् । ध्यानगम् भास्करानन्दम् स-दा ईडे ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—समर्थ, सब के नाथ, जिन की सदा उदार कीर्त्ति है। शिव स्वरूप और कल्याण के देने वाले, रोगों के काल, सब से बड़े । प्रसन्न चित्त, धर्म के मूल, भजन के योग्य । ध्यान में मगन श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं ॥ ७ ॥

भावार्थ—शाप देने में और वर देने में समर्थ

ओर सब के स्वामी और जिन की कीर्त्ति सदा उत्तम है। ऐसे शिव स्वरूप सुख भोग के देने वाले संसार रोग के नाश करने वाले सर्वश्रेष्ठ प्रसन्न चित्त धर्म के मूल भजन करने के योग्य और ध्यान में मगन ऐसे श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुस्ति करता हूं ॥७॥

एकं कृत्वा प्रकृतिपुरुषौ हृद्यलं संविधाय स्वच्छं मत्वा तमपि विमलं ब्रह्मरूपं निनाय। मानं त्यक्त्वा जगति सकलं निर्विकल्पं च धृत्वा ध्यानं नित्यं चलति सरितः कूलमूलाङ्गकेन ॥ ८ ॥

अन्वयः—प्रकृतिपुरुषौ हृदि कृत्वा। तयोः एकम् ब्रह्मरूपम् संविधाय। तदपि विमलम् स्वच्छम् मत्वा निनाय। जगति सकलम् मानम् त्यक्त्वा। निर्विकल्पम् ध्यानम् च धृत्वा सरितः कूलमूलाङ्गकेन चलति ॥ ८ ॥

शब्दार्थ-(जो) प्रकृति पुरुष को हृदय में कर के। उन दोनों का एक ब्रह्मरूप (ठहरा) कर। उस को भी विमल स्वच्छ मान कर प्राप्त हुए हैं। और जगत् में सब मान को छोड़ कर। निर्विकल्प ध्यान में स्थित होकर सदा गङ्गा तट में विचरते हैं ॥ ८ ॥

भावार्थ—जिन्हों ने प्रकृति पुरुष को विचार कर दोनों को एक ब्रह्म ठहराय शुद्ध ब्रह्म मान प्राप्त किया है ॥ और जो संसार में सब मान को छोड़ उसी ब्रह्म के निर्विकल्प ध्यान में स्थित हो सदा गङ्गा जी के किनारे किनारे विचरते हैं ॥ ८ ॥

सदा निर्विकल्पं निरीहं यतीन्द्रं
निराधारधारं प्रकाशस्वरूपम् ।
प्रसन्नं सदा ब्रह्मलीनं कुलीनं प्र-
सिद्धं सदा भास्करानन्दमीडे॥९॥

अन्वयः—सदा निर्विकल्पम् निरीहम् निराधारधारम्। प्रकाशस्वरूपम् सदा

प्रसन्नम् ब्रह्मलीनम् कुलीनम् प्रसिद्धम्
यतीन्द्रम् भास्करानन्दम् सदा ईडे॥९॥

शब्दार्थ—सदा विकल्प कर के रहित, इच्छा रहित और अवलम्ब रहित के अवलम्ब। प्रकाश-स्वरूप, सदा प्रसन्न, ब्रह्म में लीन, कुलीन और प्रसिद्ध यतीन्द्र श्रीभास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो सदा विकल्प से रहित हैं इच्छा रहित हैं जिस मनुष्य का कोई अवलम्ब नहीं है उन के भी अवलम्ब हैं प्रकाश स्वरूप हैं ऐसे सदा प्रसन्न ब्रह्म विचार में तत्पर कुलीन सर्वत्र प्रसिद्ध यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की सदा स्तुति करता हूं ॥९॥

दिनेशानलौ देहशीतं यथा सतां संगमोऽज्ञानतापं तथा। बोधरूपं हरत्याचलं सामदं तं यतिं भास्करानन्दमीडे कृशम् ॥ १० ॥

अन्वयः—दिनेशानलौ यथा देहशी-

तम् (हरतः) सताम् संगमः तथा अ-ज्ञानतापम् हरति। तम् आचलम् बो-धरूपम् सामदम् कृशम् यतिम् भास्क-रानन्दम् ईडे ॥ १० ॥

शब्दार्थ—सूर्य और अग्नि जैसे देह के शीत को हरलेते हैं । और सज्जनों का संगम जैसे अज्ञान रूप सन्ताप का नाश करता है । उस पूर्व में तीर्थ भ्रमण कारी ज्ञान रूप शान्ति के देने वाले कृश स्वरूप यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

भावार्थ—सूर्य और अग्नि जैसे देह के शीत को हर लेते हैं। और सज्जनों का संगम जैसे अज्ञान रूप सन्ताप का नाश करता है। इसी से सज्जन श्रेष्ठ पूर्व में सर्व तीर्थ भ्रमण कारी ज्ञान स्वरूप, सान्त्व के देने वाले और कृश स्वरूप यतीन्द्र श्री भास्करानन्द जी की स्तुति करता हूं ॥ १० ॥

मनसो ब्रह्मणश्चैव कश्चिद् भेदो न दृश्यते । सविकल्पं मनः प्रोक्तं निर्विकल्पं तदुच्यते ॥ ११ ॥

अन्वयः—मनसः ब्रह्मणः चैव। कश्चित् भेदः नदृश्यते। मनः सविकल्पम् प्रोक्तम्। निर्विकल्पम् तद् उच्यते ॥११॥

शब्दार्थ—मन का और ब्रह्म का कोई भेद नहीं देखा जाता है। मन को सविकल्प कहा है। और ब्रह्म निर्विकल्प कहागया है ॥ ११ ॥

भावार्थ—मन में और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् दोनों एक हैं तो भी जब-तक विकल्प करता रहता है तब तक मन कहा जाता है और जब इस का विकल्प छूट गया तब वही ब्रह्म कहा जाता है ॥ ११ ॥

एवंभूतं मनो यस्य यतीन्द्रं तमहं भजे । गततृष्णं भवातीतमाऽऽनन्दवनचारिणम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—यस्य मनः एवम् भूतम् अहम् तम् गततृष्णम् भवातीतम् आनन्दवनचारिणम् यतीन्द्रम् भजे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—जिस का मन ऐसा है मैं उस तृष्णा रहित संसार से परे आनन्दवन में विचरने वाले यतीन्द्र जी का भजन करता हूं ॥ १२॥

भावार्थ—जिस का मन उक्त प्रकार का है अर्थात् विकल्प रहित होने से ब्रह्मरूप सा है मैं उस तृष्णा रहित संसार से परे वर्त्तमान आनन्दवन अर्थात् काशी वासी श्री यतीन्द्र जी का भजन करता हूं ॥१२॥

महादेवः शुक्रो वदति भवतापा-
नलक्लशान् जनान् काशीवासं
झटिति सुखसिन्धुं सुकृतिनः ।
जना ज्ञानायैवं भजत भवपोतं
सुकृतिनं यतीन्द्रं सानन्दं परम-
ममलं तं खवसनम् ॥ १३ ॥

अन्वयः—महादेवः शुक्रः भवतापानलक्लशान् जनान् वदति । सुकृतिनः जनाः ज्ञानाय काशीवासम् सुखसिन्धु

म् । भवपोतम् सुकृतिनम् परमम् सानन्दम् अमलम् । खवसनम् यतीन्द्रम् तम् (यूयम्) भजत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—महादेव शुक्ल संसार के संताप से पीडित जनों से कहता है कि हे पुण्यवान् लोगो ! ज्ञान के लिये काशी जी में वास करने वाले सुख के सागर, संसार रूप समुद्र के नौका रूप, पुण्यवान् , श्रेष्ठ आनन्दयुक्त, निर्मल दिगम्बर उस यतीन्द्र का तुम लोग भजन करो ॥१३॥

भावार्थ—महादेव शुक्ल, संसार के सन्ताप रूपी अग्नि की पीड़ा से दुर्बल मनुष्यों से कहते हैं कि ऐ ! पुण्यवान् लोगो ! ज्ञान का लाभ हो इस लिये काशी जी में वास करने वाले, सुख के सागर, भवसागर के जहाज अर्थात् संसार से उद्धार करने वाले, पुण्यवान् , श्रेष्ठ, आनन्दयुक्त, निर्मल और दिगम्बर जो यतीन्द्र जी हैं तुम लोग उन का भजन करो ॥ १३ ॥

इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं यो यतेः प्रयतो ऽनिशम् । सर्वान् का-

मानवाप्नोति भास्करानन्दरूपि-
णः ॥ १४ ॥

अन्वयः—यः प्रयतः भास्करानन्द रूपिणः यतेः इदम् स्तोत्रम् नित्यम् पठेत् । सः अनिशम् सर्वान् कामान् अवाप्नोति ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—जो तत्पर होकर श्री भास्करानन्द यतीन्द्र जी के इस स्तोत्र को नित्य पढ़े । वह सदा सब कामों को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भावार्थ—जो एकाग्र चित्त मनुष्य, यतीन्द्र भास्करानन्द जी के इस स्तोत्र के नित्य पढ़ता है । वह सदा सब मनोरथों को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

इति श्रीमहादेवशुक्लविरचितं यतीन्द्रस्तोत्रं सम्पूर्णम्

उँ मदनरिपोर्न्नन्दनं वदे.

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो का-
रुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ। मा-
मुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्टया ऋज्वा-
तिकारुण्यसुधाभिवृष्टया ॥ १ ॥

अन्वयः—हे स्वामिन् हे नतलोकबन्धो हे कारुण्यसिन्धो ! ते नमः। भवाब्धौ पतितम् माम् ऋज्वातिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या आत्मीयकटाक्ष दृष्ट्या उद्धर ॥१॥

शब्दार्थ—हे स्वामी हे नम्र लोगों के रक्षक हे करुणा के समुद्र ! आप को नमस्कार है। भव सागर में पडे हुए मुझे सरल कृपा युक्त अमृत की दृष्टि रूपी अपनी कटाक्षदृष्टि से उवारिये ॥१॥

भावार्थ—हे स्वामी हे नम्र लोगें के रक्षक हे करुणा के समुद्र आप का नमस्कार है। भव सागर में डूवता जो मैं हूं सो मेरा उद्धार सरल और अति करुणा

युक्त अमृत वर्षने वाली अपनी कटाक्षदृष्टि से उद्धार कीजिये ॥ १ ॥

दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तं दोधूयमानं दुरदृष्टपातात्। भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शरण्यमन्यं यदहं न जाने ॥ २ ॥

अन्वयः—दुर्वारसंसारदवाग्नितप्तम् । दुरदृष्टपातात् दोधूयमानम् । मृत्योः भीतम् प्रपन्नम् (माम्) परिपाहि। यत् अहम् अन्यम् शरण्यम् न जाने ॥ २ ॥

शब्दार्थ—जिस का वारण नहीं हो सकता ऐसे संसार की दावाग्नि से सन्तप्त और दुष्ट अभाग्य के उदय से कांपते हुए । मृत्यु से भीत और शरणागत मेरी रक्षा कीजिये। क्योंकि मैं दूसरे रक्षक को नहीं जानता ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस का वारण नहीं हो सकता ऐसी संसार की दावाग्नि से सन्तप्त और दुष्ट अभाग्य के

आने से कांपता हुआ और मृत्यु भय से डरता हुआ आप की शरण में आया हूं मेरी रक्षा कीजिये क्योंकि मैं आप के सेवाय और दूसरे को रक्षा करने वाला नहीं जानता ॥ २ ॥

शान्ता महान्तो निवसन्ति स-
न्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः ।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना
हेतुं विनान्यानपि तारयन्तः ॥३॥

अन्वयः—स्वयम् भीमभवार्णवम् तीर्णाः । वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः हेतुम् विना अपि अन्यान् तारयन्तः । शान्ताः महान्तः सन्तः जनाः निवसन्ति ॥ ३ ॥

शब्दार्थ—शान्त स्वभाव बड़े सज्जन लोग । आप भयंकर संसार समुद्र के पार पहुंच गए हैं। वसन्त ऋतु के समान लोकों का हित करते हुए । कारण के विना भी औरों को तारते हुए निवास करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ—शान्तचित्त बड़े सन्त लोग आप भयानक संसार समुद्र के पार पहुच गए हैं। तौ भी जैसे शिशिर ऋतु के क्रूर स्वभाव से कुरूप वृक्षों के नवपल्लव दान से सुशोभित करता वसन्त ऋतु विचरता रहता है इसी प्रकार लोगों का हित करते हुए और कारण के विना ही संसार सागर से उद्धार करते हुए यहां वास कर रहे हैं ॥ ३ ॥

इति मैथिलस्वामिकृतप्रार्थनायां श्लोकत्रयम् ॥

गुरुपञ्चरत्न.

कवित्त.

चंप चपला के कमला के चंद्रमा के चारु हरण प्रभा के जाके अँग उजियारे हैं। सिन्धु सुखमा के, हैं विहीन उपमा के, कुन्द कैरव कपूर देखि द्युति हिय हारे हैं। लक्षिमन समन संताप, पाप दासन के यमफांस त्रास स्वामी करण किनारे हैं। मोह तम नासी ज्ञानदीपक प्रकाशी मानो शम्भु अविनाशी काशी नरतन धारे हैं ॥ १ ॥
अधरम दारण पसारण धरमन के श्रुतिमत

मण्डन परखण्डन निकारे हैं। अधम उधारण सुधारण स्वदासन के विपति विदारण परम सुखकारे हैं। लक्षिमन दोष दुख दारिद दरण असरण के सरण स्वामी चरण उदारे हैं। मोह तम नासी ज्ञानदीपक प्रकाशी मानो शम्भु अविनाशी काशी नरतन धारे हैं ॥ २ ॥ जोग व्रत साधे कोउ देव अवराधे कोउ इन्द्रियन बांधे जपि वीज आषरण को। तीरथ अटन कोउ राम को रटन पाप ताप के कटन शोधे अन्तःकरण को। वेद-मत धारे कोउ करत अचारे कोउ जग व्यव-हारे त्यागि चाहत तरन को। मेटि सब दोषो देहु आपनो परोसो लक्षिमन को भरोसो स्वामी रावरे चरण को ॥ ३ ॥ जप तप ध्यान को न सुरसरि न्हान को न हरि गुन गान को न ब्रह्म आचरण को। कानन निवास को न जोगिन के पास को न आस उपवास को न यंत्र के भरण को। दृढज्ञान ध्यान को न श्रुति औ पुराण को न पूजन विधान को न देव पितरण को। मेटि सब दोषो देहु आपनो परोसो लक्षिमन को

भरोसो स्वामी रावरे चरण को ॥ ४ ॥ अरथ गनेश के, दिनेश के धरम चारु, कामना भरण कामशत्रु चित धर्यो हैं । मुक्ति कमलेस के धनेश के सुधन भयो जुक्ति जगदम्व के दयाते अनुसर्यो हैं । भुवन वनाइवे को विक्रम विरंचि पायो लक्ष्मिन स्वामि सांची जानि यह अर्यो हैं । धारिवे धरा के शेष तारिवो तरंग गंग अधम उधारिवो तिहारे वाट पर्यो हैं ॥ ५ ॥

इतिश्री लाल लक्षिमन सिंह कृतं
गुरुपञ्चरत्नं समाप्तम् ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

कवित्त ।

वैठो वघम्वर पै हे दिगम्वर मेटत दारिद नम्वर लेश को । शीश पै गंग पिये नित भंग सुअंग भुजंग हे कंकण शेष को । ऐसो अनूप सो देव सुरक्षहि यज्ञवहादुर सिंह नरेश को । काह करे गो रिसाय कोई शिर पर कर जा के हमेश महेश को ॥ १ ॥ वेद विधान से पूजे

सदा शिव जाकी शिवै में रहै चित की गति। भालविभूति शिवाक्ष के माल करै द्विज को लखि कै नितही नित। दान दया दरिआव महा मति यज्ञबहादुर सिंह महीपति। काह करे नर पाजी कोई शिव जापै रहै नित राजी सतीपति ॥ २॥ कवि कोविद केते गुनीजन केतिक दूर सो आवत गावत कीरति। धन भूषण वाहन दै तिनको नित मेटत्त दारिद की लिपि की ततिं। सुचि नीति निधान सुरेश समान सो यज्ञबहादुर सिंह महीपति। कोई रूसिके काह करे जिन के ऋषिसे गुरु भास्करानन्द यतीपति ॥ ३ ॥ वास करै अविमुक्त में नित्य दिगम्बर भोगत जो जगती को। केते नरेश महान धरे पदपै शिर जाके करे विनती को। कै करुणा से कियो निज सेवक यज्ञबहादुर भूमिपती को। काह करै गो रिसाय कोई है जो सेवक भास्करानन्द यती को ॥ ४॥ ब्रह्म समान अमान सदा समता करै रंक करोर पती को। त्यागि विषै विष से अवधूत पुनीत करे विप सो धरती को। भागि भरो

जन जो जग में ढिग जाय करै के लिये विनती को। लोचन गोचर सोई करै भवमोचन भास्करानन्द यती को ॥ ५ ॥ आस तजे न धरे तनवास निरंतर आनन्द कानन वासी। जाहिर योग जहान में जासु किए नति के अघ ओघ विनासी। चारि पदारथ को फल देत मनो महि मैं कैलाश के वासी। पूरि हैं काम सबै मन के भज भास्करानन्द यती अविनासी ॥ ६ ॥ वसन विहीन लीन पुरुष पुरातन में काशिका पुरी में नित करत निवास हैं। दरस के हेत जाके धरत धरा मैं पद पाप जरि जात घन पाय ज्यों जवास है। धनद सिहात पाकशासन शकात कलि मल दलि जात यम खात तासो त्रास है। आनन्द को कन्द स्वामी भास्करानन्द जी के चरणसरोज करैं जाके हिय वास हैं ॥ ७ ॥ जावे न क्यों जन तू अविमुक्त सदा शिवस्वामी विमुक्ति लखा वे। संतत सम्पति देत सबै जन को जग में अभिलाप पुरावे। भास्करानन्द यतीपति के पदपंकज में चित जो नित लावै। जा-

रत पाप अरण्य शरण्य सुरेश समीप सो आसन पावै ॥ ८ ॥ इत्यष्टकं समाप्तम् ॥

विमल विवेक एक ब्रह्म को विचार सार वेदन को जानि श्रुतिपथ विचरन हैं । करुणा समान ज्ञान दान में प्रमान सदा काम क्रोध लोभ मोह मद के हरन है । कलिमल नाशन प्रकाशन प्रकाश जग जाहिर परमहंस जन के शरन हैं । वारिज वरन दुख दारिद दरन स्वामी भास्करानन्द महाराज के चरन हैं ॥१॥ गति मति दायक सहायक सुयोगिनके होत ही दरश पापपुंज के हरण हैं । योगीजन धनिक धरेश धरामंडल के जासु रज ही को करै भाल आभाभरण हैं । ध्यान के धरत ज्ञान परम प्रकाश करै वृंदावन सद ब्रह्म पद वितरण हैं । वारिज वरण सुख संपति करन स्वामी भास्करानन्द महाराज के चरण हैं ॥ २ ॥

इति शुभम् ॥

